वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५४ अंक १ जनवरी २०१६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)
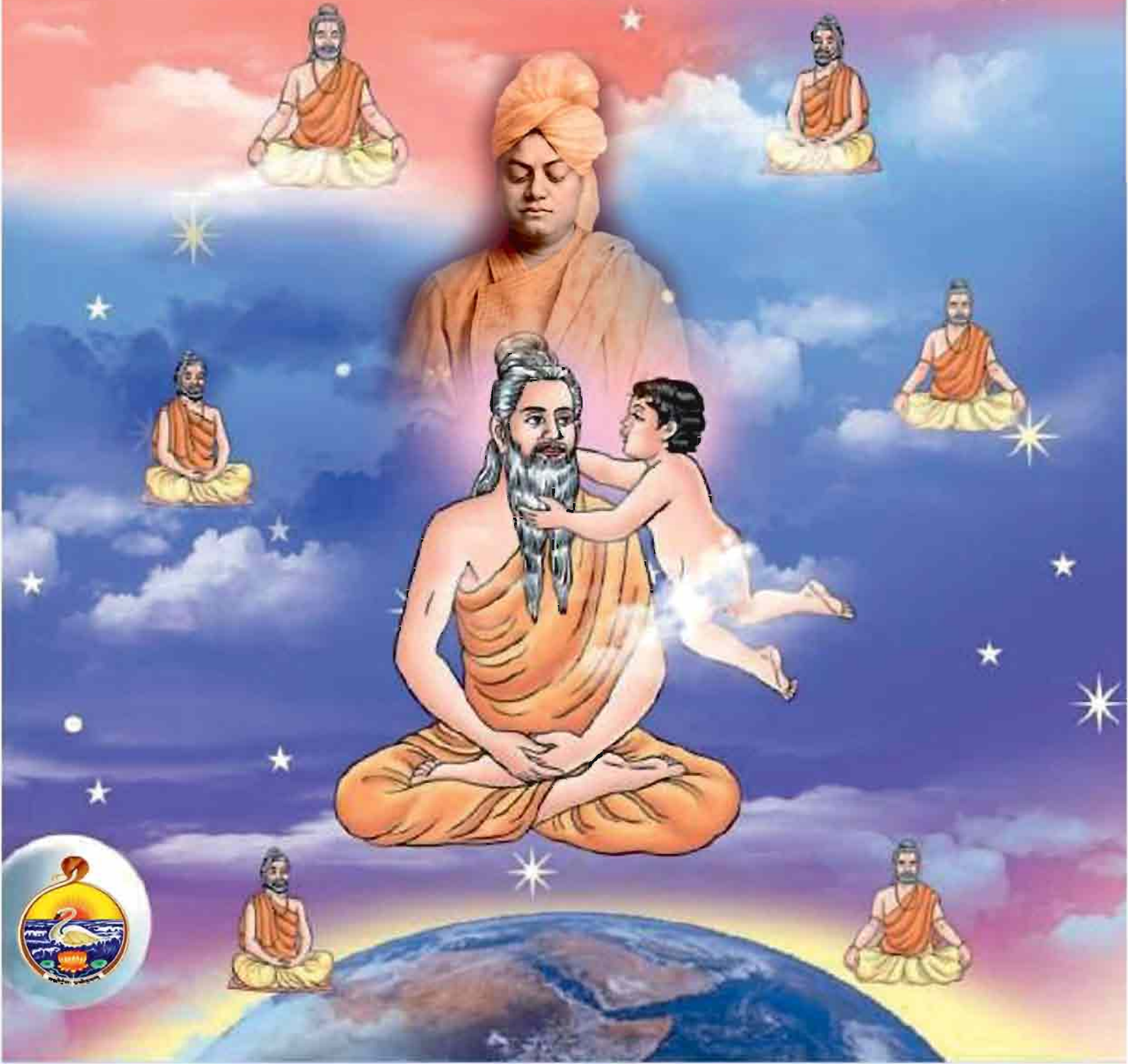
॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जनवरी २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक १

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,७००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द के जन्म के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण देव को एक अद्भुत दर्शन हुआ था। प्रस्तुत आवरण पृष्ठ में इसी को चित्र द्वारा दिखाने का प्रयास किया गया है। श्रीरामकृष्ण देव के ही शब्दों में, ''एक दिन देखा, मन समाधि के मार्ग से ज्योतिर्मय पथ में ऊपर उठता जा रहा है। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रयुक्त स्थूल जगत का सहज में ही अतिक्रमण कर वह पहले सूक्ष्म भाव-जगत में प्रविष्ट हुआ। उस राज्य के ऊँचे स्तरों में वह जितना ही उठने लगा, उतना ही अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पथ के दोनों ओर दिखाई पड़ने लगीं। क्रमश: उस राज्य की अन्तिम सीमा पर वह आ पहुँचा। वहाँ देखा, एक ज्योतिर्मय परदे के द्वारा खण्ड और अखण्ड राज्यों का विभाग किया गया है। उस परदे को लाँघकर वह क्रमश: अखण्ड राज्य में प्रविष्ट हुआ। वहाँ देखा कि मूर्तरूपधारी कुछ भी नहीं है ...किन्तु दूसरे ही क्षण दिखाई पड़ा कि दिव्य ज्योतिर्घन-तनु सात प्राचीन ऋषि वहाँ समाधिस्थ होकर बैठे हैं... इसी समय देखता हूँ कि अखण्ड भेदरहित समरस, ज्योतिर्मण्डल का एक अंश घनीभूत होकर एक दिव्य शिशु के रूप में परिणत हो गया। वह देवशिशु उनमें से एक के पास जाकर अपने कोमल हाथों से आलिंगन करके अपनी अमृतमयी वाणी से उन्हें समाधि से जगाने के लिए चेष्टा करने लगा। शिशु के कोमल प्रेम-स्पर्श से ऋषि समाधि से जागृत हुए और अधखुले नेत्रों से उस अपूर्व बालक को देखने लगे... वह अद्भुत देवशिशु अति आनन्दित होकर उनसे कहने लगा, 'मैं जा रहा हूँ, तुम्हें भी आना होगा,...उस समय आश्चर्यचकित होकर मैंने देखा कि उन्हीं ऋषि के शरीर-मन का एक अंश उज्ज्वल ज्योति के रूप में परिणत होकर विलोम मार्ग से पृथ्वी पर अवतीर्ण हो रहा है। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) को देखते ही मैं जान गया था कि यही वह है।'' बाद में भक्तों द्वारा पूछने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं ही उस शिशु का रूप धारण किया था।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५२ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाएँ पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। – **व्यवस्थापक**

आवश्यक सूचना

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष जनवरी, २०१६ में भी विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में विभिन्न प्रतियोगिताएँ होंगी और पं. रविशंकर विश्वविद्यालय में आश्रम और विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में १२ जनवरी को विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राओं द्वारा स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि दी जायेगी। १ जनवरी को श्रीमाँ सारदा और ३१ जनवरी को स्वामी विवेकानन्द जयन्ती के अवसर पर आश्रम-मन्दिर में पूजा, होम और व्याख्यान होंगे। २ फरवरी, २०१६ से १० फरवरी तक आश्रम प्रांगण में स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती (राजेश रामायणी जी) के रामचरित मानस पर संगीतमय प्रवचन होंगे।

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५४ | जनवरी २०१६ | अंक १

सर्वधर्म-प्रार्थना

यं वैदिका मन्त्रदृशः पुराणं,
इन्दुं यमं मातरिश्वानमाहुः।
वेदान्तिनोऽनिर्वचनीयमेकं,
यं ब्रह्मशब्देन विनिर्दिशन्ति ।।
सैवायमीशं शिव इत्यवोचन
यं वैष्णवा विष्णुरिति स्तुवन्ति ।
बुद्धस्तथा अर्हन्निति बौद्ध जैनाः
सत् श्रीअकालेति च सिक्खसन्तः ।।
शास्तेति केचित् कतिचित् कुमार,
स्वामीति मातेति पितेति भक्त्या ।
यं प्रार्थयन्ते जगदीशितारं,
स एक एव प्रभुरद्वितीयः।।

जिस परमात्मा को वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषिगण पुराण पुरुष, चन्द्रमा, यमराज, मातरिश्वा (वायु) इत्यादि नामों से सम्बोधित करते हैं, वेदान्ती जिसे एक, अनिर्वचनीय और ब्रह्म आदि शब्दों से निर्दिष्ट करते हैं, शैवधर्मावम्बी जिसे शिव और वैष्णव लोग विष्णु ऐसा कहकर स्तुति करते हैं, बौद्ध जिसे भगवान बुद्ध और जैन जिसे अर्हत् नाम से पुकारते हैं, सिक्ख जिसे सत् श्रीअकाल नाम से पुकारते हैं, कोई साईं आदि मतावलम्बी मालिक ऐसे नाम से कहते हैं, कोई शैवमतावलम्बी कुमार स्वामी ऐसे नाम से सम्बोधित करते हैं, कोई शाक्त मतावलम्बी भक्ति के कारण जिसे माता और पिता के रूप में पुकारते हैं, जो इस चराचर जगत का ईश्वर है, वह एक, अद्वितीय सबका स्वामी परमेश्वर ही है।

पुरखों की थाती

मौनान्मूर्खः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः ।
धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।।४८३।।

– सेवाधर्म अत्यन्त जटिल है और योगियों तक की समझ के परे है, क्योंकि (सेवक) यदि प्राय: चुप रहे, तो उसे गूँगा कहा जाता है, यदि बोलने में कुशल हो, तो उसे बड़बोला या बातूनी कहा जाता है, यदि सदा निकट रहे, तो ढीठ और दूर रहे, तो मूर्ख कहा जाता है, यदि सहनशील हो, तो दब्बू और न सहे, तो नीच कहलाता है।

मूर्खोऽपि शोभते तावत्सभायां वस्त्रवेष्टितः ।
तावच्च शोभते मूर्खो यावत्किंचिन्न भाषते ।।४८४

– वस्त्रों से अलंकृत मूर्ख भी विद्वानों की सभा में तब तक तो सुन्दर ही दीखता है, जब तक कि वह कुछ बोलता नहीं।

मूलं भुजङ्गैः कुसुमानि भृङ्गैः
शाखा प्लवङ्गैः शिखराणि भल्लैः ।
नास्त्येव तच्चन्दनपादपस्य
यन्नाश्रितं दुष्टतरैश्च हिंस्रैः ।।४८५।।

– चन्दन-वृक्ष की जड़ में साँप, फूलों पर भौंरे, डालियों पर बन्दर और चोटी पर भालू विराजमान रहते हैं; उसका कोई भी भाग ऐसा नहीं है, जिस पर दुष्ट या हिंस्र जन्तु न बसते हों।

मृगतृष्णासमं वीक्ष्य संसारं क्षणभङ्गुरम् ।
सज्जनैः सङ्गतं कुर्याद् धर्माय च सुखाय च ।।४८६।।

– संसार को मृगतृष्णा के समान क्षणभंगुर जानकर, धर्म तथा सुख की प्राप्ति हेतु सज्जनों का संग करना चाहिए।

विविध भजन

नाथ तुम्हीं सिद्धान्त हमारे

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती, झाँसी

नाथ तुम्हीं सिद्धान्त हमारे ।
तुम्हीं हो ज्ञान विराग तुम्हीं हो,
तुम्हीं योग वेदान्त हमारे ।।
नाथ तुम्हीं ...
तुम्हीं हो पूजा पाठ तुम्हीं हो,
तुम्हीं ध्यान एकान्त हमारे ।।
नाथ तुम्हीं ...
तुम्हीं हो स्त्रष्टा सृष्टि तुम्हीं हो,
तुम्हीं हो भाव प्रशान्त हमारे ।।
नाथ तुम्हीं ...
तुम परिजन धन धाम तुम्हीं हो,
तुम पर्वत वन प्रान्त हमारे ।।
नाथ तुम्हीं ...
तुम्हीं भक्ति आसक्ति तुम्हीं हो,
तुम्हीं दृष्टि दृष्टान्त हमारे ।।
नाथ तुम्हीं ...
जन राजेश का एक यही बल,
सर्वस श्री श्रीकान्त हमारे ।।

करिये राम नाम गुण गान

पं. शिवनारायण शर्मा, छिंदवाड़ा

करिये राम-नाम गुण गान ।
कीजै जीवन का कल्यान ।। टेक ।।
राम नाम अमृत रस सागर,
भर जाएगी, मन की गागर,
करिये मन भर कर रसपान ।। करिये
नीरस जीवन राम बिना है,
धन यौवन केवल सपना है,
धरिये निशिदिन हरि का ध्यान ।। करिये
सब कुछ धरा धरा रह जाये,
स्वांस का पंछी कब उड़ जाये ।
करिए स्वांस स्वांस प्रभु गान ।। करिये

सारदा आयी

स्वामी विदेहात्मानन्द

(अहीरभैरव या वैरागी - रूपक)

स्नेह-सुरसरि सारदा आयी ।
दिव्य ममता को प्रकट कर, विश्व में भायी ।।
राजती वैकुण्ठ में जो, विष्णु की अर्धांगिनी हो,
रूप लेकर मानवी वो, सारदा आयी ।।
जगत का दुख-भार हरने, धर्म का उद्धार करने ।
तृषित जन के प्राण भरने, सारदा आयी ।।
देख सबकी दुर्दशा अति, द्रवित हो संतान के प्रति,
कर कृपा देने परम गति, सारदा आयी ।।

हे विवेकानन्द स्वामी

स्वामी विदेहात्मानन्द

(केदार, बागेश्री या शंकरा-रूपक)

हे विवेकानन्द स्वामी, शान्ति के तुम दूत हो ।
देव मंडल के कदाचित् विचरते अवधूत हो ।।
भारती प्रज्ञा सृजन के, फुल्ल कुसुमित चारुवन के,
परम सुन्दर पुष्प के सम सम्प्रति उद्भूत हो ।।
धर्म का अमृत पिलाने, मर्त्य अवनी को जिलाने,
सप्त ऋषियों के भुवन से, रामकृष्णाहूत हो ।।
ब्रह्मद्युति औ क्षात्रबल से विचरते सारे धरातल,
वन्दना करते जगत-जन, सर्वथा अभिभूत हो ।।
जागरण का मन्त्र देकर, निडरता का मन्त्र देकर,
प्रगति का आह्वान करते, मनुज पूर्व अभूत हो ।।

भज ले रामकृष्ण का नाम

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

भज ले रामकृष्ण का नाम ।
अखण्ड अनन्त प्रेमसिन्धु प्रभु देंगे चिन्मय धाम ।।
परम पावन अतीव मनहर, कितना अद्भुत कितना सुन्दर !
कर ले रे मन-मूरख कर ले हरिरस अमृत पान ।।
जो त्रेता में कृष्ण हुए थे, जो द्वापर में राम हुए थे,
जिसने कृष्ण हो कंस संहारा, जिसने राम हो रावण मारा ।
वे ही युग ईश्वर प्रभु आए, रामकृष्ण धर नाम ।।
भव बन्धन का चक्र छुड़ाते, कर्मडोर का पाश कटाते,
सुख शान्ति निज भक्ति देते अपना पद निर्बान ।।
अनन्त नाम की महिमा भाई, सुन लो मन से ध्यान लगाई ।
चाहे जैसे जहाँ जभी लो, दौड़ आते कृपानिधान ।।

स्वामी विवेकानन्द की विरासत के उत्तराधिकारी युवको !

सम्पादकीय

प्रिय युवक वृन्द ! विश्व के नीलाभ गगन में उदीयमान प्रखर सूर्य सम तेजस्वी युवकों का 'राष्ट्रीय युवा दिवस' पर हार्दिक अभिनन्दन ! प्रतिवर्ष १२ जनवरी को विश्व चेतना के जाग्रतकर्ता स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती के उपलक्ष्य में यह दिवस मनाया जाता है। इसलिये स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा चिर अभिलषित युवाशक्ति को सौंपे गये विरासत का स्मरण कराना हमारा परम कर्तव्य है। इसके पूर्व हम यह जान लें कि युवा कौन है और उसके कर्तव्य क्या हैं।

युवक कौन है?

भारत के महान राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर जी ने युवा मन की परिभाषा और लक्षणों को इंगित करते हुए लिखा है –

संचित करो लहू लौहू है जल सूर्य जवानी का।
धमनी में इस बजता है निर्भय तूर्य जवानी का।।
पत्थर-सी हो मांस-पेशियाँ लोहे-से भुजदण्ड अभय।
नस-नस में हो लहर आगकी तभी जवानी पाती जाय।।

ऐसे युवा-शक्ति के लक्षणों से युक्त युवकों का स्वामी विवेकानन्द जी ने राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पण करने का आह्वान किया था। स्वामीजी स्वयं एक सबल सशक्त युवक की अभिलाषा रखते हैं। वे कहते हैं – 'मैं चाहता हूँ लोहे के पुट्ठे और फौलाद के स्नायु, जिनके भीतर ऐसा मन वास करता हो, जो वज्र के समान पदार्थ का बना हो... बल, पुरुषार्थ, क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज हो।''(विसा.५/३९८)

''तुम्हारे देश के लिए वीरों की आवश्यकता है – वीर बनो। चट्टान की तरह दृढ़ रहो। सत्य की हमेशा विजय होती है। ... सभी बड़े-बड़े कार्य प्रबल बिघ्नों के बीच ही होते हैं। हे वीर स्मर पौरुषमात्मन: उपेक्षितव्या: सुकृपणा: कामकांचनवशगा: – हे वीर अपने पौरुष का स्मरण करो, काम-कांचन में आसक्त दयनीय लोगों की उपेक्षा ही करनी चाहिए।'' (वि सा. ३/३२३)

''हमारे राष्ट्र के लिये इस समय कर्म, तत्परता और वैज्ञानिक प्रतिभा की आवश्यकता है। ... महान तेज, महान बल और महान उत्साह की आवश्यकता है। (वि. सा. ४/४०७)

''हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस और अपार धैर्य चाहिए, तभी महान कार्य सम्पन्न होगा। (वि.सा. ५/४०३)

तैत्तिरीय उपनिषद के मन्त्रद्रष्टा ऋषि युवक के लक्षणों को अभिव्यक्त करते हैं – **युवा स्यात्साधुयुवाध्यायक आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः** (२/८/२)। – अर्थात् युवक सदाचारी उत्तमचरित्रवान, वेदाध्यायी हो, अनुशासित, संयमी हो, कुशल शासक हो, उसके सर्वांग और सर्वेन्द्रियाँ नीरोग, सुदृढ़ और शक्तिशाली हों।

इतने दिव्य गुणों, विलक्षण प्रतिभासम्पन्न चरित्रवान युवक की अभिलाषा स्वामी विवेकानन्द करते हैं। क्योंकि उनके भावी सर्वशक्तिमान भारत के निर्माण में सर्वाधिक सहयोगी यही युवाशक्ति है। ऐसी युवाशक्ति का परम कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र की सुरक्षा, संवर्धन में अपने जीवन को समर्पित कर दे। राष्ट्र की सेवा के पहले हमें राष्ट्र की पूरी धारणा का होना आवश्यक है।

राष्ट्र क्या है?

राष्ट्र की परिभाषा देते हुए महान कवयित्री महादेवी वर्मा जी लिखती हैं – नदी पर्वत समतल मात्र राष्ट्र नहीं बन जाते और न मानवों की विषम भीड़ ही राष्ट्र कहलाने की अधिकारिणी हो जाती है। वस्तुत: राष्ट्र शब्द से प्रबुद्ध चेतन, किन्तु स्वेच्छया एकताबद्ध मानव समूह और उसका परिवेश दोनों का बोध होता है।''[१] एक स्वस्थ मानव जैसे पार्थिव शरीर से सूक्ष्म चेतना तक और प्रत्यक्ष कर्म से अदृष्ट संकलन-स्वप्न तक, एक ही इकाई है, वैसे राष्ट्र भी विभिन्न स्थूल और सूक्ष्म और प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष शक्तियों का एक जीवित गतिशील विग्रह है।'' [२]

प्रो. विराज के अनुसार ''किसी भी बड़े भू-भाग को हम देश कह सकते हैं, किन्तु वहाँ के पहाड़, वहाँ की नदियाँ और वहाँ के वन ही देश के सब कुछ नहीं हैं, अपितु उस देश के निवासी देश के और भी महत्त्वपूर्ण अंग हैं। जैसे भू-भाग के बिना केवल निवासी देश नहीं कहला सकते, उसी प्रकार निवासियों के बिना भी कोई भू-भाग देश नहीं कहला सकता, विशेष रूप से देशभक्ति की दृष्टि में। उपरोक्त वस्तुओं के प्रति तीव्र प्रेम होना ही देशभक्ति है।''[३]

अत: अपने प्राणप्रिय राष्ट्रीय स्वरूप को जानने के बाद युवक को अपने देश की सम्पूर्ण सम्पदा की सुरक्षा और देशवासियों की सेवा करने का संकल्प लेकर अपनी क्षमतानुसार

राष्ट्र की सेवा में संलग्न होना चाहिए। राष्ट्र-सेवा के लिए सर्वप्रथम शिक्षार्जन और सच्चरित्र का निर्माण कर उसके योग्य बनें और राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्र के कण-कण की रक्षा हेतु तत्पर हो जायँ। राष्ट्रसेवा हेतु राष्ट्रप्रेम की भावना से अनुप्राणित होना परम आवश्यक है।

राष्ट्रीय भावना को जाग्रत कैसे करें?

अपने जीवन में राष्ट्र के द्वारा किए गए योगदान का स्मरण करें और उसके प्रति कृतज्ञता का बोध करें। तब राष्ट्र के प्रति प्रेम-भावना से मन ओतप्रोत होगा। किसी कवि की पंक्तियाँ हृदय में मातृभक्ति की भावना को मँथने के लिए उत्प्रेरित करती हैं –

जिसके रज-कण में खेल-खेल,
निज जीवन का श्रृंगार किया।
उस मातृभूमि के लिए कहो,
जीवन में क्या व्यवहार किया।।

स्वदेश-प्रेम देश के प्रति कृतज्ञता-बोध से परिपुष्ट होता है। जिस देश के पावन रज कण में जन्म लिया, जिस देश की मातृवत् उर्वराभूमि के अन्य कण से शरीर सबल हुआ, जिस देश की निर्मल सरिता के पावन जल से शरीर में रस-रक्त का संचार हुआ, जिस देश की वायु ने हमें प्राणवन्त किया, जिस देश की प्रखर स्निग्ध, सूर्य, चन्द्र किरणों ने हमें तेजस्वी, विनम्र और शीलवान बनाया, जिस देश के ऋषि मुनियों ने स्वयं तपकर जीवन-मूल्यों और उनके मार्ग का अनुसंधान हमारे लिए किया, जिस देश की सीमाओं को दुष्टों से बचाकर हमारे सैनिकों ने हमें शान्ति का जीवन दिया, जिस देशवासियों ने अपने श्रम-सीकरों से सफलता के उच्चतम शिखरों पर पहुँचने में हमारी प्राणपण से सहायता की, क्या उसके प्रति हमारा कुछ कर्तव्य नहीं है? 'माँ के प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?'

इस प्रकार के चिन्तन से सर्वप्रथम राष्ट्रभूमि के प्रति कृतज्ञ बनें। राष्ट्र-माता के ऋणी बनें। उनके प्रति अपार प्रेम और अनन्य, निष्ठा उत्पन्न करें। अपने हृदय को राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता की भावना से ओत-प्रोत कर लें।

ऋणशोध नहीं, सेवा करें

हमारे ऊपर अपनी मातृभूमि का इतना ऋण है कि हम मातृभूमि के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकते। इसी भावना से उत्प्रेरित होकर सोहनलाल द्विवेदी जी ने लिखा –

तन समर्पित मन समर्पित और यह जीवन समर्पित,
चाहता हूँ देश की धरती तुझे कुछ और भी दूँ,..।

हम अपनी प्राणों से प्यारी मातृभूमि के प्रति सच्चाई से अपने कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं, सेवा कर सकते हैं, किन्तु इसके ऋणों से मुक्त नहीं हो सकते।

एक घटना है। एक युवक अपनी माँ से जाकर कहता है – माँ मैं तुम्हारा सारा ऋण आज चुकाने आया हूँ। बोलो तुम्हें क्या चाहिए। माँ ने कहा – बेटा, केवल एक रात उस गीले कम्बल पर सो जाओ। केवल इतना ही ! युवक प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेता है। माँ ने कम्बल भिगाकर बिछा दिया। जाड़े की रात थी, लड़का कुछ ही मिनटों में ठिठुर जाता है। अन्त में कुछ मिनटों में ही उठकर खड़ा हो जाता है। माँ ने कहा – बेटा, मैं तो न जाने ऐसी कितनी रातें ठिठुर कर बितायी हूँ। जब तुम रात में पेशाब कर देते थे, सारा बिस्तर भीग जाता था, तो भी मैं तुम्हें छाती से लगाए रहती थी। तुम कुछ देर भी सहन न कर खड़े हो गए। लड़के को बात समझ में आ गई कि माँ से उऋण नहीं हुआ जा सकता। माँ के प्रति यथाशक्ति उनकी आवश्यकतानुसार कर्तव्य-पालन कर उनकी सेवा की जा सकती है। उसके बाद वह माँ से क्षमा माँगकर उनकी सेवा में लग गया।

एक दूसरा युवक था। वह प्रमाद का शिकार हो गया। संसार के किसी भी कार्यों में उसकी रुचि नहीं थी। उसने भ्रम से इसे वैराग्य की उच्चतम अवस्था समझ ली। वह एक ऋषि के पास जाकर प्रवाजक जीवन की जिज्ञासा करता है। ऋषि मनोविज्ञानी थे। उन्होंने युवक की हताशा, निराशा प्रमाद, आलस्यता और कर्तव्यहीनता के मनोभाव को समझ लिया। उन्होंने युवक से पूछा – क्या नौ मास उदर में रखने वाली माँ की सेवा की है? क्या जीवन के चतुर्दिक प्रहरी सब सुविधाएँ देकर सब कष्ट सहकर तुम्हें इतना बड़ा करनेवाले अपने माता-पिता की सेवा कर उनके प्रति कर्तव्यों का पालन कर लिया है? युवक ने कहा – नहीं। ऋषि ने पुन: पूछा – क्या तुमने अपनी मातृभूमि के प्रति कर्तव्यों का पालन किया है? युवक ने 'नहीं' कहा। क्या तुमने देव, ऋषि आदि ऋणों से मुक्ति पाई है? युवक का उत्तर निषेधात्मक था। ऋषि ने कहा – वत्स, कर्तव्यहीन व्यक्ति कभी भी मुक्ति नहीं प्राप्त करता। आत्ममुक्ति के पथ पर चलने के लिए कर्तव्यपरायणता, निष्ठा, संयम प्रखर-तेजस्विता तथा उत्साह के साथ गहन साधना की आवश्यकता होती है। अत: सबसे पहले अपने वर्तमान कर्तव्यों का

पालन कर अपने भीतर उपरोक्त गुणों का विकास करो। युवक पर ऋषि की ओजस्वी वाणी का प्रभाव पड़ा। उसकी अन्तश्चेतना जग गयी। तदनन्तर वह अपने आवश्यक कर्तव्यों का पालन कर अन्त में ऋषि के संरक्षण में साधना कर आत्ममुक्ति का अधिकारी बना।

अत: सर्वप्रथम युवक राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का बोध करें और उसके पालन में तत्पर हों।

कर्तव्य और अधिकार का संघर्ष

कभी-कभी लोग अपने अधिकारों के प्रति बहुत सजग रहते हैं। उन अधिकारों की प्राप्ति के लिए अत्यधिक संघर्ष करते हुए किसी भी सीमा तक चले जाते हैं। किन्तु कर्तव्य-पालन के प्रति विशेष दृष्टि नहीं जाती। इसलिए हमें अधिकारों के पहले अपने कर्तव्यों पर एक दृष्टि डाल लेनी चाहिए।

कर्तव्य क्या है? – 'कर्तव्य' की परिभाषा 'बृहत् हिन्दी कोशकार ने इस प्रकार दिया है – जिसे करना उचित या आवश्यक हो, करणीय, काटने योग्य, नष्ट करने योग्य। 'मानव अधिकार' नामक पुस्तक के प्रणेता डॉ. जय जयराम उपाध्याय जी ने भारतीय संविधान में उल्लिखित अनुच्छेद ५१ क में १० मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया है – "देश की रक्षा करें और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करें। भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करें जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ...। हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझें और उसका परिरक्षण करें।..." (पृष्ठ. ३२९)

अधिकार क्या है? – प्रत्येक व्यक्ति को समाज के सदस्य के रूप में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और वह राष्ट्रीय प्रयास और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से और प्रत्येक राज्य के गठन और संसाधनों के अनुसार ऐसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को प्राप्त करने का हकदार है, जो उसकी गरिमा और उसके व्यक्तित्व के उन्मुक्त विकास के लिये अनिवार्य है।" (वही पृ.३५४)

ऋषि, मुनि, आचार्य और भारतीय संविधान भी हमें अधिकार के साथ कर्तव्य-पालन करने का परामर्श देते हैं। कर्तव्यों के पालन में आवश्यक राष्ट्र में उपलब्ध वस्तुओं, उपकरणों को शान्ति से विधिपूर्वक प्राप्त करना हमारा अधिकार है। कर्तव्य-पालन से व्यक्ति में अधिकार-प्राप्ति एवं उत्तरदायित्व-संवहन की क्षमता आती है। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्व का पालन करना हमारा परम कर्तव्य है।

स्वामी विवेकानन्द की विरासत और उसके उत्तराधिकारी कौन?

स्वामी विवेकानन्द ही एक ऐसे महान संन्यासी हुए, जिन्होंने अपने जीवन की विरासत को भारत की भावी पीढ़ी के युवकों को विश्वास के साथ समर्पित किया – "हे युवकों मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणप्रण प्रयत्न को थाती के रूप में तुम्हें अर्पण करता हूँ। (वि. सा. १/४०५)

आजादी के ६८ वर्ष बाद आज भी देश में बहुत से गरीब, अशिक्षित, अस्वस्थ और उत्पीड़ित लोग हैं। हम उन सबकी यथायोग्य सेवा कर राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का पालन कर सकते हैं। राष्ट्रवासी ही तो राष्ट्र के परम धन, मूल प्राण हैं। इनकी सेवा करना हमारा परम कर्तव्य है। हम गरीबों को भोजन और रोजगार देकर उन्हें आत्मनिर्भर बनावें, अशिक्षितों को शिक्षा दें, रोगियों को चिकित्सा-सुविधाएँ प्रदान करें और समाज में प्रेम, सद्भावना, न्याय का विस्तार कर सामाजिक उत्पीड़न से लोगों को बचाएँ। राष्ट्र में ऐसी समृद्धि समरसता लाना हमारा परम कर्तव्य है। राष्ट्रीय युवा दिवस पर युवकों से यही अभिलाषा है और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य पालनार्थ संघर्ष हेतु आह्वान है।

महाराणा प्रताप, शिवाजी, सुभाषचन्द्र बोस, बिस्मिल्ला खाँ, चन्द्रशेखर आजाद ने देशवासियों को अँग्रेजों के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिए अपनी सुख-सुविधाओं का त्यागकर स्वतन्त्रता संग्राम की बलिवेदी पर अपने को समर्पित कर दिया। बहुत से समाज-सुधारकों, समाज सेवकों, राष्ट्रनायकों ने स्वतन्त्रता के बाद देशवासियों को सुखी-सम्पन्न बनाने के लिए जीवन की अन्तिम साँस तक अथक श्रम किया। अत:, हे युवकों ! आप स्वतन्त्र भारत में स्वतन्त्र भारतवासियों की सुख-समृद्धि और सद्भावना परिवेश के निर्माण हेतु अपने स्वार्थ, अहंकार और सुख को न्यौछावर कर राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-पालन हेतु तत्पर हो जाइए। आपके ही पुरुषार्थ, अध्यवसाय और महान जीवन से निर्मित होगा स्वामी विवेकानन्द के सपनों का नया भारत ! सर्वसम्पन्न भारत ! विश्वगुरु भारत ! ○○○

सन्दर्भ

१. मेरे प्रिय सम्भाषण, महादेवी वर्मा, पृ.१; **२.** वही, पृ. २४; **३.** हिन्दी निबन्ध-लेखन, प्रो. विराज

विवेक वाणी

अपने आप पर विश्वास

स्वामी विवेकानन्द

आत्मविश्वास का आदर्श ही हमारी सर्वाधिक सहायता कर सकता है। यदि यह 'आत्मविश्वास' और भी विस्तृत रूप से प्रचारित होता और कार्यरूप में परिणत हो जाता, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जगत में जितना दुख और अशुभ है, उसका अधिकांश लुप्त हो जाता। मानव-जाति के समग्र इतिहास में सभी महान स्त्री-पुरुषों में यदि कोई महान प्रेरणा सबसे अधिक सशक्त रही है, तो वह यही आत्मविश्वास है। वे इस ज्ञान के साथ पैदा हुए थे कि वे महान बनेंगे और वे महान बने भी। मनुष्य कितनी भी निकृष्ट अवस्था में क्यों न पहुँच जाय, एक ऐसा समय अवश्य आता है, जब वह उससे आर्त होकर ऊर्ध्वगामी मोड़ लेता है और स्वयं में विश्वास करना सीखता है। पर हम लोगों को शुरू से ही इसे जान लेना अच्छा है।

जो व्यक्ति स्वयं से घृणा करने लगा है, उसके पतन का द्वार खुल चुका है; यही बात राष्ट्र के विषय में भी सत्य है।

हमारा पहला कर्तव्य यह है कि 'हम स्वयं से घृणा न करें', क्योंकि आगे बढ़ने के लिये यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं में विश्वास रखें और फिर ईश्वर में। जिसे स्वयं में विश्वास नहीं, उसे ईश्वर में कभी विश्वास नहीं हो सकता।

तुम जो कुछ सोचोगे, वही हो जाओगे; यदि तुम अपने को दुर्बल सोचोगे, तो दुर्बल हो जाओगे; बलवान सोचोगे, तो बलवान हो जाओगे। यदि तुम अपने को अपवित्र सोचोगे, तो अपवित्र हो जाओगे; अपने को शुद्ध सोचोगे, तो शुद्ध हो जाओगे। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि हम स्वयं को दुर्बल न समझें, प्रत्युत अपने को बलवान, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ मानें। यह भाव हममें चाहे अब तक प्रकट न हुआ हो, पर हममें है अवश्य। हमारे भीतर सम्पूर्ण ज्ञान, सारी शक्तियाँ, पूर्ण-पवित्रता और स्वाधीनता के भाव विद्यमान हैं। फिर हम उन्हें अपने जीवन में व्यक्त क्यों नहीं कर सकते? इसलिए कि उन पर हमारा विश्वास नहीं है। यदि तुम उन पर विश्वास कर सको, तो उनका विकास होगा – अवश्य होगा।

संसार का इतिहास उन थोड़े-से व्यक्तियों का इतिहास है, जिनमें आत्मविश्वास था। यह विश्वास अन्त:स्थित देवत्व को ललकार कर प्रकट कर देता है, तब व्यक्ति कुछ भी कर सकता है, वह सर्वसमर्थ हो जाता है। असफलता तभी होती है, जब तुम अपने अन्त:स्थ अमोघ शक्ति को अभिव्यक्त करने की यथेष्ट चेष्टा नहीं करते। जिस क्षण व्यक्ति या राष्ट्र आत्मविश्वास खो देता है, उसी क्षण उसकी मृत्यु आ जाती है।

वीरता

मित्रो! पहले मनुष्य बनो, तब देखोगे कि बाकी सभी चीजें स्वयं ही तुम्हारा अनुसरण करेंगी। आपस के घृणित द्वेष-भाव को – कुत्ते के समान परस्पर झगड़ना तथा भूँकना छोड़कर भले उद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सच्ची वीरता का अवलम्बन करो। तुमने मनुष्य योनि में जन्म लिया है, तो अपने पीछे कुछ स्थायी चिह्न छोड़ जाओ –

तुलसी आये जगत में, जगत हँसे तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो, आप हँसे जग रोय।।

अगर ऐसा कर सको, तभी तुम मनुष्य हो, अन्यथा तुम किस काम के हो?

'दुनिया चाहे जो कहे, मुझे क्या परवाह ! मैं तो अपना कर्तव्य-पालन करता चला जाऊँगा'' – यही वीरों की बात है। ''वह क्या कहता है'' या ''क्या लिखता है'' – यदि ऐसी ही बातों पर कोई रात-दिन ध्यान देता रहे, तो संसार में कोई महान कार्य नहीं हो सकता। क्या तुमने यह श्लोक सुना है –

निन्दन्तु नीतनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीतिकुशल लोग तुम्हारी निन्दा करें या स्तुति, लक्ष्मी तुम पर कृपालु हों या जहाँ खुशी चली जायँ, तुम्हारी मृत्यु आज हो या अगले युग में, परन्तु न्यायपथ से कभी विचलित न होना। कितने ही तूफान पार करने पर मनुष्य शान्ति के राज्य में पहुँचता है। जिसे जितना बड़ा होना है, उसके लिए उतनी ही कठिन परीक्षा रखी गयी है। परीक्षा रूपी कसौटी पर उसका जीवन कसने पर ही जगत ने उसको महान कहकर स्वीकार किया है। जो भीरु या कापुरुष होते हैं, वे समुद्र की लहरों को देखकर अपनी नाव को किनारे पर ही रखते हैं। जो महावीर होते हैं, वे क्या किसी बात का ध्यान देते हैं? 'जो कुछ होना है सो हो, मैं अपना इष्टलाभ करके ही रहूँगा' – यही यथार्थ पुरुषकार है। इस पुरुषकार के हुए बिना कोई भी दैवी सहायता तुम्हारी जड़ता को दूर नहीं कर सकती। ○○○
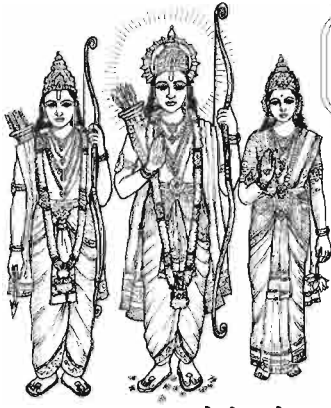
धर्म-जीवन का रहस्य (८/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

परन्तु यदि कोई कहे कि श्रीराम तो उसे सत्य मानते हैं। वह सूक्ष्म तत्त्व यहीं आया। श्रीराम के सामने मुख्य प्रश्न यह नहीं था; और यही धर्म का एक प्रमुख सूत्र है। प्रभु बोले – सत्य के नाम पर मुझसे सत्ता और स्वार्थ को स्वीकार करने के लिए कहा जा रहा है। उन्होंने कहा – ऐसा नहीं होगा ! और सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने त्याग किया। तो मुख्य सूत्र यह है कि धर्म हमारे स्वार्थ के समर्थन की युक्ति देता है या फिर धर्म हमें त्याग की प्रेरणा देता है। भरत बोले – प्रश्न यह नहीं है कि श्रीराम ने क्या निर्णय लिया। भगवान राम ने जो निर्णय लिया, वह अर्थ उनके लिए ठीक है, उपयोगी है, पर मेरे लिए ठीक नहीं है। यह एक महानतम सूत्र है। धर्म को हम इस कसौटी पर कसकर देखें कि कहीं हम धर्म के नाम पर तर्क देते हुए अपने स्वार्थ, ईर्ष्या या अभिमान आदि वृत्तियों को बढ़ावा तो नहीं दे रहे हैं ! एक ही कसौटी है। यदि ये वृत्तियाँ बढ़ रही हैं, तो किसी भी शास्त्र का कोई भी श्लोक आपके लिए अनुपयोगी है।

भरतजी इस रहस्य को जानते हैं। भगवान राम उसको सत्य के रूप में स्वीकार करते हैं। उन्हें इन सब विवादों में पड़ने की कोई जरूरत नहीं कि इसके मूल में किसकी क्या भावना है – कैकेयी स्वार्थी हैं, मन्थरा षड्यंत्रकारी है या पिताजी धर्म से अनभिज्ञ हैं, आदि-आदि। श्रीराम की दृष्टि में वही धर्म है और वही सत्य है, जिसके माध्यम से उनके पिताजी द्वारा दिये गये वचन की रक्षा होती है और जो समाज तथा उनके स्वयं के लिए कल्याणकारी है। महाभारत में श्रीकृष्ण भी कहते हैं – सत्य वही है, जिससे सभी प्राणियों का परम हित हो –

यद्-भूतहितम्-अत्यन्तम् ।।

श्रीराम भी शब्दों में उलझने वाले नहीं है। यह न समझ लीजिएगा कि श्रीराम शब्द को सत्य मानकर चले गये। यदि ऐसा ही होता तो सुमन्तजी पीछे-पीछे रथ लेकर गये थे। श्रीराम ने उनसे कहा था – आपको याद रखना चाहिए कि महाराज शिबि, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि ने धर्म के लिए बड़ा-से-बड़ा त्याग किया –

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा ।
सहे धरम हित कोटि कलेसा ।। २/९५/३

परन्तु मुझे तो धर्म के लिये केवल चौदह वर्ष वन में ही रहना है, तो भी यदि मैं इस धर्म का परित्याग कर दूँ, तो मुझे कलंक लगेगा –

मैं सोइ धरम सुलभ करि पावा ।
तजे तिहूँ पुर अपजस छावा ।। २/९५/६

भगवान श्रीराम ने वह एक महान सूत्र दिया। कोई कष्ट जब हमारे ऊपर बलपूर्वक लादा जाता है, तो वह बात और है, परन्तु जब हम कष्ट को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं, तब तो वह हमारे लिए आनन्ददायी हो जाता है। भगवान श्रीराम बोले – आप तो धर्म का रहस्य जानते हैं। आप कह रहे हैं कि पिताजी ने यह कहा है कि राम को चार दिन में लौटाकर ले आना, परन्तु यह बात तो पिताजी मुझसे भी कह सकते थे, माँ कैकेयी के सामने भी कह सकते थे, परन्तु उस समय तो वे मौन रहे, अत: वस्तुत: पिता की आज्ञा-पालन करना ही मेरा धर्म है। – तो आप चार दिन में क्यों नहीं लौटते?

बोले – यह जो वन में जाने की आज्ञा है, तपस्या करने की जो आज्ञा है, वह धर्मयुक्त है, वह पिता की आज्ञा है और चार दिन में लौटाने की जो आज्ञा है, वह पिता की नहीं, यह तो उनकी ममता की आज्ञा है। पुत्र के प्रति ममता उमड़ आई कि मेरे पुत्र को बड़ा कष्ट होगा। भगवान हँसकर बोले, जब पिताजी को यह कहना पड़ा कि इनको चार दिन वन में घुमा ले आओ, तो यह एक प्रकार से धर्म के साथ छल हुआ या नहीं? या तो वे कह देते कि मैं चौदह वर्ष के लिये वन जाने की आज्ञा नहीं देता, यह अधर्म है, अथवा कह देते कि चौदह वर्ष वन में रहे। परन्तु चार दिन वन में घूमकर आ जाय, वनवास की आज्ञा भी पूरी हो गई और

सत्य भी बच गया। यही छल है, जो धर्म के साथ प्राय: किया जाता है।

एक महिला ने व्रत कर रखा था। उन्हें पता था कि आज के व्रत में जल भी नहीं पिया जाता। बड़ी प्यास लगी, तो उन्होंने पानी नीचे एक कटोरे में रख दिया और कटोरे को हाथ से न उठाकर, मुँह को कटोरे के पास ले जाकर जल पीने लगीं। किसी ने कहा – यह क्या? तो वे बोलीं – ''आज के व्रत में पानी नहीं पिया जाता। यदि मैं हाथ से उठाकर पीऊँगी, तो व्रत टूट जायेगा, क्योंकि वह मनुष्य की तरह पीना हो जायेगा। ऐसे तो पशु पीता है, तो मैं पशु की तरह पी रही हूँ, मनुष्य बनकर नहीं पी रही हूँ।'' तो धर्म के साथ ऐसा छल हम लोग बार-बार करते ही रहते हैं। जहाँ कहीं धर्म हमारे भोग में आड़े आता है, तो हम ऐसा कोई मार्ग निकाल लेते हैं कि धर्म भी बचा रह जाय और हमारी इच्छा भी पूरी हो जाय। पिताजी तो स्वयं असमंजस में थे। भगवान ने पूछा – पिताजी ने चार दिन में लौटाने को कहने के बाद और भी कुछ कहा था क्या? तब सुमन्तजी को बताना पड़ा। बोले – उनके मुँह से निकला था कि राघवेन्द्र सत्यसन्ध है, दृढ़व्रती है, धीर है। यदि वह न लौटे तो –

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई।
सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई।। २/८२/१

प्रभु बोले – तो फिर पिताजी भी जानते थे कि सत्य-सन्धता, दृढ़ता और धैर्य इसी में है कि राम चौदह वर्ष के लिए वन में जाए। परन्तु वे ममता से प्रेरित होकर जो कह रहे थे, यह वे भी जानते थे कि शायद इसे मैं स्वीकार नहीं करूँगा।

भगवान श्रीराम का सत्य शब्दगत नहीं है। उन्होंने कैकेयी अम्बा से कहा – वन में मुनियों से मिलने का सौभाग्य, जिसमें सब प्रकार से मेरा हित होगा, फिर पिताजी की आज्ञा का पालन होगा और मेरे प्राणप्रिय भरत को राज्य मिलेगा। इससे तो यही लगता है कि आज विधाता सब प्रकार से मेरे अनुकूल हैं –

मुनिगन मिलनु बिसेसि बन
सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि
संमत जननी तोर।। २/४१
भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।। २/४२/१

सत्य वह है, जिसमें सबका हित हो। भगवान राम की व्याख्या यही है। उनका सत्य शब्दगत नहीं है। भगवान राम को लगता है कि इसी में मेरा और सारे समाज का हित है। इसी को उन्होंने सत्य-धर्म के रूप में स्वीकार किया। परन्तु भरतजी द्वारा इसे स्वीकार न करना ही उनकी दृष्टि में सत्य की सर्वोच्च व्याख्या थी। भरतजी का भाव यह था कि सत्य की इस व्याख्या को मान लेने का अर्थ होगा कि मन्थरा ने जिस दुर्बुद्धि से सत्य का नाम लेकर इतना बड़ा अनर्थ किया, मैं केवल अपने स्वार्थ के लिए, उस सत्य को आड़ बनाकर सिंहासन पर बैठना चाहता हूँ, अत: यह कदापि धर्म नहीं हो सकता।

धर्म की ऐसी अतिसूक्ष्म व्याख्या अन्यत्र नहीं मिलती। महाभारत काल का धर्म इतना सूक्ष्म नहीं है। कभी-कभी भगवान राम के वाक्यों में आपको विरोधाभास मिलेगा। बाद में अयोध्यापुरी के निवासियों को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा था – ईश्वर ने आपको मनुष्य शरीर दिया है, यह मानो नौका है, जहाज है। सद्गुरु मल्लाह हैं और मेरी कृपा वायु है। इस दुर्लभ मानव-शरीर को पाकर भी यदि कोई व्यक्ति भवसागर को पार नहीं करता, तो वह आत्मघाती है। साथ ही वे बोले – इसके लिये काल, कर्म और ईश्वर को दोष देना बिल्कुल भी सही नहीं है –

सो परत्र दुख पावइ
सिर धुनि धुनि पछिताई।
कालहि कर्महि ईस्वरहि
मिथ्या दोस लगाइ।। ७/४३

यह भगवान राम का वाक्य है। कैकेयीजी जब चित्रकूट में आईं, तो वे ही भगवान राम उनको बहुत समझाते हैं, परन्तु उनको सन्तोष नहीं होता। तब भगवान राम ने क्या किया? बोले – माँ, मैं तो इसमें दोष नहीं मानता, तुमने तो बड़ी कृपा की, तथापि यदि तुम्हें ऐसा लगता है कि यह बुरा ही हुआ, तो भी इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। कैकेयी ने पूछा – तो फिर किसका दोष है? जो भगवान राम एक स्थान पर कहते हैं – बहुधा लोग व्यर्थ ही काल को, कर्म को या ईश्वर को दोष दे देते हैं, वे ही कैकैयी से कहते हैं – मैं इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं मानता। कभी कोई समय ऐसा आ जाता है, पूर्वजन्म का मेरा ही कोई कर्म ऐसा रहा होगा और ईश्वर इसमें भी मेरी कोई भलाई चाहता होगा। क्या लिखा हुआ है – दोष आपका नहीं, काल-कर्म और ईश्वर का है –

पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी ।
काल करम बिधि सिर धरि खोरी ।। २/२४४/८

अद्भुत बात है । एक जगह स्वयं काल, कर्म और ईश्वर को दोष देने का खण्डन करते हैं और यहाँ स्वयं उन्हीं को दोष दे रहे हैं । इसी में धर्म का सूत्र मिल गया । अपने विषय में कोई त्रुटि हो जाय, तो काल-कर्म तथा ईश्वर का बहाना लेकर उसको बढ़ावा मत दीजिए; परन्तु यदि दूसरे से कोई भूल हो जाय, तो आप काल-कर्म तथा ईश्वर की इच्छा के नाम पर उसको उदारतापूर्वक क्षमा कर दें । ऐसा हो, तब तो मानो आपने दोनों विरोधी वाक्यों का सदुपयोग किया । हम लोग प्राय: अपनी भूल हो, तो काल-कर्म तथा ईश्वर की दुहाई देते हैं और दूसरे से हो जाय, तो कहेंगे – इसने जो भी किया है, वह जान-बूझकर किया । मैं इसे जानता हूँ, यह ऐसा ही है ।

शास्त्र के वचनों तथा धर्म की व्याख्या का अर्थ है कि हम अपने अन्त:करण की शुद्धि के लिये अपने स्वार्थ से थोड़ा ऊपर उठें, जीवन में अभिमान से हमें कुछ मुक्ति मिले, धीरे-धीरे हम उससे ऊपर उठ सकें । धर्म का मूल उद्देश्य यही है । स्वार्थ या वासना का समर्थन करना शास्त्र का उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि मनुष्य तो बिना सिखाये ही वैसा करता रहता है । उसको सिखाने की क्या आवश्यकता है? दो-दुनी-चार सिखाने के लिए तो पाठशाला की आवश्यकता है, पर दो-दुनी-पाँच सिखाने के लिए कोई भी पाठशाला नहीं है । वह तो गलती है, हो जाती है ।

हम इन सूत्रों के सन्दर्भ में विचार करके देखें कि धर्म का मूल आधार क्या होगा? इसका एक सूत्र वर्णधर्म के सन्दर्भ में भी है । स्मृतियों में कहीं-कहीं ऐसा लिखा हुआ है कि जो श्रेष्ठ कर्म करते हैं, उनका उच्च वर्ण में जन्म होता है और जो न्यून कर्म करते हैं, उनका निम्न वर्ण में जन्म होता है । अब इस सिद्धान्त के साथ भी वही समस्या है कि यदि अपने को उच्च वर्ण मानने वाला हर व्यक्ति यह कहकर अभिमान करे कि मैंने ये सत्कर्म किये, इसलिए मेरा उच्च वर्ण में जन्म हुआ, तुमने निम्न कर्म किए, इसलिए तुम्हारा निम्न वर्ण में जन्म हुआ, तब तो यह व्याख्या बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण हो जायेगी । दूसरे के मन में ईर्ष्या होगी, आपके मन में अभिमान होगा और इसको लेकर टकराहट होगी । भगवान तो विविध रूपों में अवतार लेते हैं । कभी ब्राह्मण वर्ण में आ जाते हैं, तो कभी क्षत्रिय वर्ण में आ जाते हैं । आजकल तो बड़े-से-बड़े बुद्धिमान तार्किक हैं, कहने लगे – यहाँ भी देख लीजिए, इनका स्वार्थ सिद्ध हो गया, ईश्वर यदि आता भी है, तो केवल ब्राह्मण या क्षत्रिय बनकर, वैश्य और शूद्र बनकर तो कभी आया नहीं । इसलिए इसमें भी चालाकी की गयी है । मैंने कहा – भाई, यदि आप यही मानकर व्याख्या करेंगे, तब तो आप प्रतिशत जोड़ने लगेंगे कि कितने प्रतिशत ब्राह्मण-ईश्वर अवतरित हुआ, कितने प्रतिशत क्षत्रिय-ईश्वर अवतरित हुआ । फिर यह भी तो लिखा हुआ है कि भगवान मछली और कछुए के रूप में भी अवतरित हुए थे । मैंने कहा – अरे भई, जब ईश्वर का अवतार होगा, तो भक्तों के अवतार की भी तो आवश्यकता होगी । यह भी देखिये कि कितने वैश्य महान भक्त अवतरित हुए, कितने शूद्र महान भक्त अवतरित हुए और आप दोनों को एक दूसरे का पूरक मान लीजिए । उसमें भी ऐसी गणना मत कीजिए, जो ऐसे अनर्थ की सृष्टि करे और जिससे आपस में टकराहट हो ।

इसमें सूत्र वही खण्ड और अखण्ड का है । यह सब जो खण्ड-खण्ड दिखाई दे रहा है, यदि हम उस खण्ड को देखते रहेंगे, तो हमारे चित्त में अभिमान, ईर्ष्या और संघर्ष को छोड़ अन्य कुछ आ ही नहीं सकता । परन्तु इन सारे खण्डों के मूल में यदि हमको वह अखण्ड दिखाई दे, तभी उन समस्याओं का समाधान हो सकता है । ये जो भिन्नताएँ दिखाई देती हैं, इसे यदि कोई अपने कर्मों का परिणाम मान ले, तब तो ठीक है, लेकिन जिसका जन्म उच्च वर्ण में हुआ है, वह यदि उसका अभिमान पाल लेता है, तो उसने भी धर्म को सही अर्थों में नहीं लिया है । अब इस सन्दर्भ में मानो सूत्र यह है कि यहाँ से विचार न करके, उस सूत्र से विचार क्यों न करें, जो गोस्वामीजी देते हैं – संसार की सारी स्त्रियाँ सीता हैं और सारे पुरुष श्रीराम हैं –

सीय राम मय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।। १/८/२

इसमें तो कोई वर्णगत या जातिगत विभाजन नहीं है । सारे संसार में यदि ईश्वर ही परिव्याप्त हैं, तो खण्ड के पीछे भी जो अखण्ड तत्त्व है, वह एक है और यदि हम उसी को आधार बना करके धर्म का निर्णय करेंगे, तो धर्म सच्चे अर्थों में व्यक्ति और समाज के लिए कल्याणकारी होगा । चाहे कबीर हों या कोई अन्य भक्त हों, सर्वत्र ही आपको यही सूत्र तो मिलता है । **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (३९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२५-८-१९६०

प्रश्न - क्या ठाकुर ने बौद्ध धर्म की साधना की थी?

महाराज – उनकी तो कोई पृथक् साधना की पद्धति, separate method of practice नहीं थी। ध्यान ही उनकी पद्धति थी और अद्वैतवाद का ही मिलता-जुलता रूप था। उन लोगों का जो धर्म है, ठाकुर उसे तो नित्य ही करते थे। वस्तुत: ठाकुर ने कुछ नया नहीं दिया, सब कुछ तो शास्त्र-ग्रंथों में है। मेरे बचपन में एक पंडित जी ने वचनामृत को पढ़कर कहा था, वह सब हमारे शास्त्रों में है। तब मैं नाराज हो गया था। अब समझता हूँ कि उन्होंने ठीक ही कहा था। इसके सिवाय हमारे घर में ही गोविन्दजी की सेवा – निरामिष भोग, पास में ही काली की पूजा – बकरे की बलि और उसके पास ही शिव की पूजा होती थी। इसके अतिरिक्त 'देवो भूत्वा देवं यजेत् सोऽयमिति विभाव्य स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा...'' – यह सब कहता रहता। किन्तु मैं सजग नहीं था, ठाकुर आकर सब व्यावहारिक रूप से करके तथा दिखाकर हमें सजग कर गए हैं।

हमारा हिन्दू धर्म का एक जीवन विज्ञान है और एक सृष्टि विज्ञान है। जीवन क्या है और सृष्टि रहस्य क्या है, यही समझाया गया है।

२६-८-१९६०

स्वामी निर्वेदानन्द एक सभा में उपस्थित थे। वहाँ उनके एक पूर्व छात्र ने उनकी थोड़ी प्रशंसा कर दी। उन्होंने अपने भाषण के दौरान कहा, 'क्या यह मेरी शोक सभा हो रही है, जो मेरी प्रशंसा की जा रही है? मैं तो जानता हूँ, मनुष्य के मरने के बाद ही उसकी प्रशंसा की जाती है।' यही है ठीक-ठीक साधुता।

प्रश्न – महाराज, बीच-बीच में जप माला लेने की इच्छा होती है।

महाराज – जब सचमुच ही जप माला की आवश्यकता का बोध हो, तभी लेना। तब किसी भी स्थिति में माला को बासी (बिना जप) नहीं रख सकोगे। माला लेने के समय इसका ध्यान रखना चाहिए। गले में माला पहनने का प्रचलन हो गया है, वस्तुत: हम शरीर को अपवित्र समझते हैं, क्योंकि सदैव पसीना निकलता है। पसीने को हम मूत्र समझते हैं। इसके अतिरिक्त रुद्राक्ष की माला किस लिए लेना? फिर रुद्राक्ष (धारण करने) में कौन सा धर्म है? यदि रुद्राक्ष का मूल्य अधिक हो, तो स्फटिक या तुलसी की माला का उपयोग करो। गणना ही तो उद्देश्य है। माला गिनने से अवश्य ही मन में शक्ति आती है कि इतना कर लिया। और यह भी है –

माला जपे साला, कर जपे भाई।
मन ही मन जो जपे उसकी बलिहारी जाई।।

जप की अपेक्षा ध्यान अच्छा है। जप कर रहा है, इधर मन अन्यत्र घूम रहा है। असली उद्देश्य तो है मन को (ईश्वर से) जोड़ना। उसके लिए ही तो अभ्यासयोग है। घंटा, आरती, वाद्य, मन्त्र, मुद्रा, सबका असली उद्देश्य है मन को योग में रखना। इन सब प्रक्रियाओं की सहायता से बहिर्मुखी मन को एक घेरे में लाकर रखने से ध्यान में सहायता मिलती है, बिखरा हुआ मन थोड़ा सिमट एकाग्र हो जाता है। आरती आदि वैदिक कर्म नहीं हैं, ये वैष्णवों के कर्म हैं। गोपाल चरागाह से लौट रहे हैं, माँ यशोदा दीपक लेकर उनका मुख देखती हैं, इन सब भावों से आरती का प्रारम्भ हुआ है।

प्रश्न – जो पूजा करेगा, क्या उसको ही आरती करनी होगी?

उत्तर – नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है। आरती पूजा के ठीक बीच में नहीं पड़नी चाहिए।

प्रश्न – क्या इन पूजाओं में संन्यासी का अधिकार है?

उत्तर – शिव, काली आदि की तान्त्रिक पूजा है, लक्ष्मी, सरस्वती की पौराणिक पूजा है, वैदिक कर्म में संन्यासी का अधिकार नहीं है। संन्यासी जनेऊ आग में डालकर वैदिक कर्मों का त्याग करके घर से निकल पड़ा। फिर भी दुर्गापूजा आधी तान्त्रिक पूजा है और आधी वैदिक

पूजा है। यह पूजा करने के लिए ब्राह्मण शरीर होना चाहिए।

जो हो इन सभी पूजाओं का असली उद्देश्य है अभ्यासयोग। ठाकुर यहाँ जीवन्त हैं, ऐसा जानकर, उसी भाव से व्यवहार करना। तुम लोग अपने गुरुदेव को जिस भाव से रखने की आवश्यकता समझते हो उसका दस गुना करने से जो होता है, वैसा करने से थोड़ा-सा अभ्यासयोग होता है।

एक विधवा के पास एक गोपाल की मूर्ति थी। वह प्रतिदिन उसे भोग लगाकर भोजन करती थी। यह देखकर बहुत से लोग उसकी हँसी उड़ाते। एक दिन उसने खाते समय अनुभव किया कि सब्जी में नमक पड़ा ही नहीं। तब वह क्रन्दन करने लगी, अरे मेरे गोपाल का आज भोजन नहीं हुआ।

यद्यपि यह रजोगुण है, प्रकट करने का मनोभाव है, लोगों को बताना चाहती है, फिर भी जो लोग उसकी हँसी उड़ाते थे, उनसे वह हजार गुना श्रेष्ठ है। यही है अभ्यासयोग का प्रयत्न।

प्रश्न – हम लोग 'गुरुमहाराज' कहने से ठाकुर को ही समझते हैं। फिर भी मठ में 'जय भगवान श्रीरामकृष्णदेव की जय' क्यों बोला जाता है?

महाराज – अखण्डानन्द महाराज ने विषम परिस्थिति में प्रारम्भ किया है। सभी शिष्य गुरु कहने से अपने-अपने दीक्षागुरु को ही सोचते हैं, यही सब देखकर उन्होंने बलपूर्वक शुरू किया – गुरुमहाराज, अर्थात् श्रीरामकृष्णदेव।

साधारण मनुष्य सर्वदा सम्प्रदाय बनाना चाहता है, मनुष्य की पूजा करना चाहता है। उच्चतर आदर्श लेना नहीं चाहता। ठाकुर कहने से उनके तत्त्व की ओर दृष्टि नहीं होती। बड़े अधिकार से कहते हैं – हम सब श्रीरामकृष्ण के चेला। प्रसाद पाने की बेला।

प्रश्न – हमारे आश्रम में कठोर रेजीमेन्टेशन (सैन्य-अनुशासन) नहीं है। क्या सभी को एक कड़ी दिनचर्या का पालन कराने से अच्छा होगा?

महाराज – बहुत कड़ाई करने से सब कुछ ठीक नहीं होता। मन में भाव रहना चाहिए। त्रिसन्ध्या में इसीलिए तो प्रार्थना की जाती है – 'धियो यो नः प्रचोदयात्।' इसीलिए तो मैं स्वाध्याय के ऊपर जोर देता हूँ। नियमित स्वाध्याय नहीं करने से शुद्ध धारणा नहीं होती।

सत्त्वगुण को स्नेह किया जाता है, रजोगुण को बढ़ाना पड़ता है और तमोगुण को दूर से नमस्कार करना होता है अथवा समय-समय पर डाँटना-फटकारना पड़ता है।

दूसरे का गुण-दोष अपने सुधार के लिए देखना। लोगों के साथ काम करते समय मधुर-व्यवहार करना। माँ के परामर्श पर ध्यान दो। महिलाओं के साथ मिलने-जुलने के समय अपने को सम्भालना। जिस कार्य से तुम्हारे संन्यास की क्षति होने की सम्भावना हो, उसे किसी भी परिस्थिति में नहीं करना।

अमुक ने कोई बात कही है, इसलिए उसे मत मान लेना, शास्त्र के साथ मिला लेना। 'सर्वभूतस्थमात्मानम्' सभी जीवों में स्वयं को देखकर, अनुभव करके जीवों की सेवा करना या पूजा करना, यही हम लोगों का कार्य है। यह दृष्टिकोण मुख्यतया दो प्रकार के भाव का है – १. ज्ञान-प्रधान, २. भक्ति-प्रधान। ज्ञानी देखते हैं कि जैसे मैं अपने देह-मन-बुद्धि का द्रष्टा हूँ, वैसे ही सभी जीव भी तन-मन-बुद्धि के द्रष्टा हैं, अर्थात् सभी जीवों के भीतर मैं हूँ। भक्त देखते हैं कि जो भगवान हमारे हृदय में हैं, वे ही सभी जीवों में हैं। ये दोनों दृष्टिकोण एक ही चीज है। सेवा-मूलक कार्यों के लिये ज्ञानमिश्रित भक्ति की आवश्यकता होती है। इसीलिए तो तुम लोगों को रामप्रसाद का गाना पढ़ने को कहता हूँ, वहाँ सब ज्ञानमिश्रित भक्ति है।

भीतर और बाहर दोनों दिशाओं में ही आँखों को खुला रखना है। बाहर की ओर खुला रखोगे, अपनी रक्षा करने के लिए और भीतर की ओर खुला रखोगे, क्योंकि वहाँ जाना होगा। **(क्रमशः)**

हो जन्म आपका बार-बार

तारादत्त जोशी

हे युगप्रवर्तक तुम्हें प्रणाम !
हे युगावतार ! हे युगाधार !
तुम युगद्रष्टा तुम युगस्त्रष्टा,
हे धर्मावतार, तुम धर्माधार ।।
करके जगती में धर्मप्रचार,
दूर किया सब अन्धकार ।
दीनों से कर अमित प्यार,
दिया विश्व को धर्मसार ।।
हे दीनबन्धु करुणावतार,
हरने जग का अन्धकार ।
हो जन्म आपका बार-बार,
हे नरेन्द्र नमन है कोटिबार ।।

स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

तारा सुन्दरी देवी

(श्रीरामकृष्ण के एक प्रधान शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द रामकृष्ण मठ मिशन के प्रथम अध्यक्ष थे। प्रस्तुत संस्मरण बँगला मासिक 'उद्बोधन के मई/जून १९२३ अंक में प्रकाशित हुए थे। वहीं से इसका हिन्दी अनुवाद 'विवेक ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

मैं बचपन से थियेटर में काम करती थी। नाट्याचार्य महाकवि स्वर्गीय गिरीश चन्द्र घोष के अधीन मैंने काफी काल तक अभिनय किया। शरू से ही मैं गिरीश बाबू के मुख से श्रीरामकृष्ण की बातें सुना करती थी। जो भी थियेटर गिरीश बाबू के सम्पर्क में आया, उसमें श्रीरामकृष्ण का चित्र लगा रहता था और हम सभी अभिनेता तथा अभिनेत्रीगण रंगमंच पर जाने के पूर्व चित्र को प्रणाम कर लेते थे। जहाँ तक मेरा ख्याल है, अब तो यह बंगाल के प्रत्येक थियेटर की प्रथा ही बन चुकी है।

इस प्रकार बाल्यकाल से ही हमें श्रीरामकृष्ण-प्रसंग सुनने का सुयोग मिला था। बेलूड़ मठ में उत्सव आदि देखने जाने की बीच-बीच में बड़ी इच्छा होती थी। एक बार मैंने गिरीश बाबू से वहाँ जाकर एक उत्सव देखने की अनुमति माँगी। उनका उस समय का उत्तर मुझे अब भी स्पष्ट रूप से स्मरण है, "अभी नहीं, ठाकुर की इच्छा हुई, तो बाद में कभी जाना।" अत: इच्छा होते हुए भी मैं कभी बेलूड़ मठ न जा सकी थी।

फिर इसके काफी दिनों बाद, अब से शायद छ: वर्ष पूर्व (१९१६ ई. में) मेरा पहली बार मठ जाना हुआ। उस समय मेरा मन बड़ा दु:खी था, अशान्ति से परिपूर्ण था, कुछ भी अच्छा नहीं लगता था, एक जगह पर स्थिर नहीं रह पाती थी, जगत विषवत् प्रतीत होता था। मैंने अनेक तीर्थों एवं मन्दिरों का भ्रमण किया। ऐसी ही मन:स्थिति में घूमते हुए एक दिन मैं बेलूड़ मठ जा पहुँची। बंगाल रंगमंच की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री श्रीमती विनोदिनी भी मेरे साथ थीं। सात वर्ष की आयु में जब मैंने अभिनय जगत में प्रवेश किया, तो उस समय ये ही मुझे नाट्यशाला में ले गयी थीं और पहली बार मठ में जाते समय भी वे ही मेरी संगिनी थीं।

मेरे मठ में पहुँचते दोपहर हो गई थी। महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) मध्याह्न का भोजन समाप्त करके अब विश्राम करने जाने वाले थे। हमने पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया। हमें देखते ही वे बोले, "अरे, विनोद आयी है, तारा आयी है! आओ, आओ! इतनी देर से आयी! मठ में खाना-पीना तो हो चुका! पहले से खबर भेज दी होती। आओ बैठो।" देखा, वे हमारे लिए बड़े ही चिन्तित हैं। उन्होंने तुरन्त प्रसाद मँगवाया। पूरी बनवाने की व्यवस्था की। मन्दिर में प्रणाम करने के पश्चात् हम दोनों ने मठ में प्रसाद पाया, महाराज का विश्राम फिर नहीं हो सका। एक साधु को बुलाकर उन्होंने कहा, "इनको मठ में कहाँ क्या है, सब दिखा दो।" बाद में पता चला कि जिन संन्यासी ने हमें मठ का परिदर्शन कराया, उनका नाम था स्वामी अमृतानन्द।

साधु-संन्यासियों के प्रति मेरी बचपन से ही श्रद्धा-भक्ति थी, पर इसके साथ ही मैं उनसे डरती भी थी। मैं अपवित्र थी, पतिता थी, कहीं कोई अपराध न हो जाय, इस भय से मैंने संकोचपूर्वक डरते-डरते महाराज की चरणधूलि ली; परन्तु महाराज का वार्तालाप, उनका व्यवहार, हमारे लिए उनकी चिन्ता तथा यत्न देखकर हमारा भय-संकोच सब न जाने कहाँ चला गया। महाराज ने पूछा, "तुम यहाँ आती क्यों नहीं?" मैंने कहा, "भय के कारण मैं मठ में नहीं आ पाती थी।" महाराज ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ कहा, "भय! ठाकुर के पास आना, इसमें भय की क्या बात है? हम सभी ठाकुर के ही तो बच्चे हैं। भय कैसा? बेटी, जब इच्छा हो आना। भगवान बाहर से नहीं, अन्दर देखते हैं। उनके साथ कोई संकोच करने की आवश्यकता नहीं।" स्वामी प्रेमानन्द उस समय वहीं उपस्थित थे, वे भी आश्वासन देते हुए बोले, "ठाकुर के पास आने में क्या बाधा हो सकती है।"

शाम को चाय पीकर हम मठ से वापस लौटीं। हमारे विदा लेते समय महाराज ने कहा, "बीच-बीच में आती रहना। एक दिन समय पर आकर अच्छी तरह प्रसाद पाकर जाना।" यही उनके साथ मेरी प्रथम भेंट थी, और यहीं मुझे जीवन में प्रथम बार सच्चे स्नेह का आस्वादन मिला।

इसके कुछ दिनों बाद ही महाराज 'रामानुज' नाटक अभिनय देखने थियेटर आये। नाटक समाप्त हो जाने पर

मैंने महाराज की चरणधूलि ली। महाराज ने आशीर्वाद दिया, "बहुत अच्छा हुआ ! खूब भक्ति हो।" मैं कृतकृत्य हुई।

दिन बीतते गये, पर मुझे शान्ति नहीं मिली। मैं पूर्ववत् ही भटकती रही, कहीं भी आश्रय न मिला, मैं मनस्ताप की ज्वाला में जलती रही। सब कुछ सूना-सूना-सा लगता था। जगन्नाथजी के दर्शन की लालसा से मैं पुरीधाम गयी। वहाँ पर मैं भुवनेश्वर की एक धर्मशाला में ठहरी थी। संवाद मिला कि महाराज भुवनेश्वर के मठ में ही निवास कर रहे हैं। अत: मैं पुन: उनका दर्शन करने गयी। महाराज ने इस बार पुन: बैठने तथा भोजन करने को कहा, वैसा ही स्नेह, यत्न और आग्रह दिखाया। वे बोले, "अरे, धूप से तुम्हारा चेहरा कुम्हला गया है। यहाँ स्वास्थ्य सुधारने आयी हो, तो फिर धूप में व्यर्थ ही निकली। कहाँ खाती हो? कल से मठ में ही प्रसाद पाना। क्या खाना पसन्द है तुम्हें? और बेटी, हम लोग तो साधु-संन्यासी हैं, फकीर हैं, भला क्या खिला सकेंगे? फिर यहाँ मिलता भी क्या है?" उन्होंने इसी तरह की और भी अनेक बातें कहीं। मैं तो अवाक् रह गयी। ये भला कैसे साधु हैं ! एक परम मायामुग्ध गृहस्थ भी तो अपने बच्चों के लिए इतना अधीर नहीं होता ! और मैं हूँ भी कौन ! समाज में मेरा स्थान भी कहाँ है? जगत से जिसे घृणा एवं तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्य नहीं है, जिसके न कोई मित्र हैं, न पिता, न सगे-सम्बन्धी, इतना बड़ा यह संसार जिसके लिए पराया घर है, स्वार्थ के बिना जिसके साथ कोई बात भी नहीं करता, कोई मुड़कर भी नहीं देखता, इस संसार में जिसका कोई भी अपना नहीं है। परन्तु आज स्वामी ब्रह्मानन्द ने, श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र ने, सर्वत्यागी सर्वपूज्य सर्वमान्य महाराज ने कितने आकुल आग्रह के साथ, कितने अप्रत्याशित यत्न के साथ मुझे अपना बना लिया है। पिता को देखा नही, सुना है कि जब मैं मातृगर्भ में थी, तभी उनका देहान्त हो गया। मन में आया कि क्या इसी को पितृस्नेह कहते हैं, या यह उससे भी बढ़कर कुछ है? मेरी आँखें भर आयीं और जीवन के सारे आक्षेप अश्रु-बिन्दुओं के साथ घुलमिल कर भूमि पर गिरने लगे। लगा कि यही तो एकमात्र शान्ति का स्थान है। ये ही तो मेरे एकमात्र सुहृद हैं, जिनकी दृष्टि में मैं पतिता नहीं, अस्पृश्या नहीं और घृणित भी नहीं हूँ। मैं महाराज की पुत्री हूँ। जिसका कोई नहीं, उसके महाराज हैं। वे ही मेरे पिता हैं, मेरे स्वर्ग हैं, मेरी शान्ति हैं और मेरे भगवान हैं। मन की ज्वाला शान्त हुई, महाराज ने कितनी ही बातें कहीं, सभी का स्मरण नहीं है। परन्तु जो स्मरण हैं, वे ही मेरे जीवन के सम्बल हैं। उन्होंने कहा था, "बेटी, देखती हो न, संसार में कितनी ज्वाला है ! पर ऐसा न समझना कि हमने कष्ट नहीं उठाये। जब मैं ठाकुर के पास आया, तो आयु कम थी। साधन-भजन करता था, परन्तु सर्वदा शान्ति नहीं मिलती थी। मन में कितनी ही तरह की बातें उठा करती थीं, फिर अनेकों प्रकार के आकर्षण भी थे। बीच-बीच में सोचता, कहाँ ! आनन्द तो कुछ मिला नहीं। एक दिन ऐसे ही बैठा-बैठा विचार कर रहा था, सोच रहा था कि 'अब यहाँ से चला जाऊँगा और फिर ठाकुर से मिलूँगा भी नहीं।' तभी देखा कि वे सामने ही खड़े हैं। बोले, 'क्या सोच रहा है? यही न कि बड़ा कष्ट है !' मैं निरुत्तर रह गया। ठाकुर ने मेरे सिर पर हाथ रख दिया और मेरा मनस्ताप दूर हो गया। वह एक बड़ा ही अद्‌भुत आनन्द था।"

मेरे भी मुख से सहसा निकल पड़ा, "बाबा, मेरी भी बड़ी ज्वाला है, बड़ा ताप है, सहन नहीं कर पाती, इधर-उधर भाग-दौड़ कर रही हूँ। आप भी ठाकुर के समान ही मेरी ज्वाला शान्त कर दीजिए।" महाराज स्नेहमयी वाणी में कहने लगे, "ठाकुर को पुकारना बेटी, भय की कोई बात नहीं। वे इसलिए तो आए थे। उनके नाम का जप करो। पहले थोड़े दिन कष्ट होगा, फिर ठाकुर ही सब ठीक कर देंगे। भय की कोई बात नहीं बेटी, भय की कोई बात नहीं ! देखोगी, बड़ा आनन्द मिलेगा, बड़ा सुख मिलेगा।"

सुना है कि चैतन्य महाप्रभु और नित्यानन्द हम जैसे पतितों के उद्धारार्थ ही धरा पर आये थे और आज मुझे महाराज की अहैतुक कृपा का, घृणा-द्वेषरहित कृपा का अनुभव हुआ। मानो वे मेरे समान पतिताओं का उद्धार करने को ही आये थे। "कोई भय नहीं बेटी, ठाकुर के बच्चों को भय कैसा !" – क्या ही अद्‌भुत सांत्वना-वाणी है, क्या ही आश्वासन है ! मानों वे हाथ बढ़ाकर कह रहे हैं, "अरे, कहाँ कौन पतित हो, कौन तापित हो, आओ। उनकी शरण लो। भय कैसा ! ठाकुर जो हैं।"

ठाकुर से मेरी प्रार्थना है कि मैं इन महावाक्यों को जीवन के अन्तिम क्षण तक न भूलूँ। ○○○

****

ईश्वरीय मातृत्व की प्रतीक – माँ सारदा देवी

स्वामी श्रीकरानन्द

(स्वामी श्रीकरानन्द जी महाराज, रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और सहायक-सचिव थे । उनके अंग्रेजी निबन्ध Sarada Devi - An Emblem of the Motherhood of God का हिन्दी अनुवाद भिलाई के जे. पी. जाधव ने किया है । – सं.)

श्रीमाँ का सम्पूर्ण जीवन उच्च अध्यात्मिकता एवं दिव्यता से पूर्ण है। श्रीमाँ के जीवन का चिन्तन-मनन करने से हमे एक दिव्य अध्यात्मिक उच्चतर अर्न्तदृष्टि मिलती है। जिससे हमें अपने जीवन का आध्यात्मिकीकरण कर सकते हैं।

अब प्रश्न है कि इस विज्ञान के आधुनिक युग में क्या अध्यात्म के लिये कोई स्थान है? भौतिक विज्ञान हमें सभी प्रकार की सुविधायें उपलब्ध कराकर हमारे जीवन की सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। तब आध्यात्मिकता की क्या आवश्यकता है?

यदि हम गम्भीरता से निरीक्षण करें, तो निस्सन्देह यह जानेगें कि विज्ञान की उन्नति ने हमारी इच्छाओं की पूर्ति की है, परन्तु जैसे ही एक इच्छा पूर्ण हुई, हम देखते हैं कि दूसरी इच्छा वहाँ उत्पन्न हो जाती है। विज्ञान ने भले ही हमारी इच्छाओं को सब प्रकार से पूर्ण किया है, परन्तु यह अनुभव बाह्य धरातल पर ही है। हमें अन्त:करण में सन्तुष्टि नहीं मिलती है। हमें चित्त में शान्ति नहीं मिलती, हमें आन्तरिक आनन्द नहीं मिलता। इसीलिए आधुनिक समय में लोगों की सभी भौतिक इच्छायें पूर्ण होने पर भी, उनका जीवन सभी सुविधाओं से युक्त होने पर भी, उन्हें कुछ विवशता का अनुभव होता है। जैसे जीवन भर वे मृग-मरीचिका के समान, प्यासे मृग के समान तप्त रेगिस्तान में स्वप्निल जल के सरोवर की छाया के पीछे न समाप्त होनेवाली दौड़ लगा रहे हैं। क्या वास्तविक पूर्णता प्राप्त करने में आधुनिक विज्ञान समर्थ है?

विज्ञान के दो पहलू होते हैं – १. सैद्धान्तिक विज्ञान और २. प्रायोगिक या व्यावहारिक विज्ञान। यह दूसरा विज्ञान हमारी वर्तमान दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परन्तु यह हमें निष्काम नहीं बना सकता ! तो क्या सैद्धान्तिक विज्ञान इस समस्या को सुलझा सकता है? यदि हम विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि आधुनिक विज्ञान, भौतिक पदार्थों के गुण-अवगुण का ज्ञान है, जिसे हम अपनी इन्द्रियों के द्वारा अनुभव कर सकते हैं। सम्बन्धित उपकरण केवल भौतिक अनुभवों के क्षेत्र को अधिक जानने-समझने को बढ़ा देते हैं। परन्तु हमारी ज्ञानेन्द्रियों की अनुभवशक्ति सीमित है। हमारी आँखें एक निश्चित सीमा के पश्चात नहीं देख सकतीं। हम एक निश्चित सीमा के बाद श्रवण नहीं कर सकते। इसका अर्थ है कि हमारी इन्द्रियों की एक निश्चित सीमा है। इसीलिये जो अनुभव, जो ज्ञान इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है, वह सीमित, अपूर्ण होता है, दोषपूर्ण होता है। क्योंकि ज्ञानेन्द्रियाँ कभी भी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकतीं। इसीलिये बड़े-बड़े वैज्ञानिक यह अनुभव करते हैं कि नि:संदेह, भौतिक विज्ञान का ज्ञान, इसकी अतुलनीय शक्ति हमारे जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम है, किन्तु शाश्वत सत्य का ज्ञान, परम सत्य को पाने की तीव्र उत्कण्ठा, इसे प्राप्त करने का कोई दूसरा ही मार्ग है। यह दूसरा मार्ग, क्या है?

हमारे वैदिक युग के प्राचीन ऋषि बहुत पहले यह जान गये थे कि परम सत्य की अनुभूति इन्द्रियों के द्वारा नहीं प्राप्त हो सकती। इसे केवल दूसरे मार्ग से ही जान सकते है, जिसे हम अध्यात्म कहते हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद में हम यह पढ़ते हैं – **यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवा:**। अर्थात् जब मानव ऐसा शक्तिशाली बन जायेगा कि वह आकाश को, इस ब्रह्माण्ड को त्वचा के समान लपेट लेगा। **तदा देवमविज्ञाय दु:खस्यान्तो भविष्यति।।** अर्थात् तभी मानव यह आशा कर सकता है कि ईश्वर की अनुभूति के बिना ही, ईश्वर को जाने बिना ही उसके सभी दुख-कष्ट दूर हो जाएँगे। यह कितना असम्भव कार्य है !

अब प्रश्न यह है कि वर्तमान आधुनिक समय में भगवान को जानना, उनका दर्शन पाना सम्भव है? क्योंकि हमारी यह धारणा है कि केवल वैदिक-कालीन ऋषि-मुनियों को वह क्षमता प्राप्त थी, जिससे वे भगवान को जान सके थे। परन्तु वर्तमान युग में भी श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में हम इसे प्राप्त करते हैं। इसी जीवन में उन्होंने

बताया कि हम भी भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। कितना अद्भुत उनका जीवन था ! उनका जन्म एक अत्यन्त गरीब ग्रामीण परिवार में हुआ था। वे एक अशिक्षित अनपढ़ ग्रामीण थे। उनके जीवन से समाज के सभी वर्गों के नर-नारियों को आशा की किरण मिलती है। श्रीरामकृष्ण देव ने दूसरे धर्मावलम्बियों को भी ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग दिखाया। अर्थात् भगवान की प्राप्ति किसी धर्म से सीमित नहीं है। हमारे जीवन में केवल आध्यात्मिकता की आवश्यकता है ! विभिन्न धर्मों में उनके सामाजिक जीवन के व्यावहारिक एवं क्रियात्मक पक्षों में भिन्नता हो सकती है, परन्तु हर व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में किसी भी धर्म के होने पर भी आध्यात्मिक मार्ग में समानता होती है।

श्रीरामकृष्ण देव यह जान गये थे कि वर्तमान समय में मानव की कुछ सीमाएँ हैं। इसीलिये उन्होंने विभिन्न धर्मों की विभिन्न साधनाएँ की। उसके बाद उन्होंने कहा कि वर्तमान में भक्ति का मार्ग ही सबसे अच्छा है। उन्होंने कहा कि वर्तमान युग के मानव का प्राण अन्नगत है। यदि हम इसका शाब्दिक अनुवाद करें, तो मानव की जीवनी शक्ति 'अन्न' पर आधारित है। इसीलिये नारदीय भक्ति सूत्र में श्री नारदजी द्वारा बताया गया मार्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। क्या इसका अर्थ यह है कि वैदिक-कालीन ऋषियों की जीवनी शक्ति, उनके प्राण अन्न पर अवलम्बित नहीं थे? क्या वे अपने जीवन की रक्षा के लिये कुछ दूसरा भोजन ग्रहण करते थे? हम सभी श्रीरामकृष्ण के जीवन में देखते हैं कि वे वही भोजन ग्रहण करते थे, जो हम लोग ग्रहण करते हैं, फिर 'अन्नगत' प्राण का क्या अर्थ हुआ? वेदान्त में हम पढ़ते हैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पाँच मूलभूत तत्त्वों से बना है – १. पृथ्वी २. वायु, ३. जल ४. अग्नि एवं ५. आकाश।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मुख्यत: पाँच सूक्ष्म तत्त्वों से बना है। वेदान्त में हम पढ़ते हैं कि इस पृथ्वी की उत्पत्ति कैसे हुई। इसमें सभी पाँचों प्रमुख तत्त्व विद्यमान हैं। यह रचना ऐसी है – ५०% पृथ्वी तत्त्व और ५०% में समान भाग में शेष चार तत्त्व – जल, वायु, अग्नि और आकाश तत्त्व हैं।

इन पाँच सूक्ष्म तत्त्वों में कुछ गुण भी हैं। पृथ्वी में गंध की शक्ति, वायु में स्पर्श की शक्ति, जल में रस की शक्ति, अग्नि में रूप की शक्ति और आकाश में शब्द की शक्ति, श्रवण की शक्ति है। इसीलिये वैदिक-काल के ऋषियों ने इस सत्य को जान लिया कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पाँच प्रमुख तत्त्वों से निर्मित हुआ है। तब निश्चित ही यह भी सत्य है कि हमारा शरीर भी इन्हीं पाँचों तत्त्वों से बना है। अत: हमारे शरीर का स्थूल भाग पृथ्वी से निर्मित हुआ है, जिसे अन्नमयकोष कहते हैं। क्योंकि इसका पृथ्वी से उत्पन्न अन्न से पालन-पोषण हुआ है।

अन्नमय कोश से सूक्ष्म तत्त्व प्राणमय कोश है, जिसकी उत्पत्ति वायु तत्त्व से हुई है। इससे भी अधिक सूक्ष्म तत्त्व मनोमय कोश है, जिसकी उत्पत्ति जल तत्त्व से हुई है। मनोमय कोश से भी सूक्ष्म तत्त्व विज्ञानमय कोश है, जिसकी उत्पत्ति अग्नि तत्त्व से हुई है। इससे भी अधिक सूक्ष्म, आनन्दमय कोश है, जिसकी उत्पत्ति आकाश तत्त्व से हुई है। इन सभी कोशों से सूक्ष्म आत्मा है, इसी को ईश्वर या परमात्मा कहते हैं।

ये प्राण, वायु, हमारे शरीर के आन्तरिक क्रिया-कलापों का संचालन एवं नियंत्रण करते हैं। शरीर के अन्दर की सभी क्रियाएँ, इस प्राणमयकोश के द्वारा ही होती हैं। अत: जब श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि वर्तमान युग में मानव के अन्नगत प्राण हैं, तो इसका अर्थ यह है कि प्राणमय कोश का प्रवाह भी अन्नमय कोश की दिशा में होता है। इसीलिए हम यह अनुभव करते हैं कि मनोमय कोश भी इस शारीरिक धरातल पर चला जाता है, विज्ञानमय कोश भी शरीर के स्तर पर हो जाता है। यहाँ तक कि आनन्दमय कोश भी शारीरिक स्तर पर खींचा चला आता है। वर्तमान युग में हम चारों ओर यही देखते हैं। प्राय: अधिकांश लोग शरीर के इन्द्रियों और इन्द्रिय विषयों के द्वारा सन्तुष्टि पाने के लिए इन्द्रियों और इन्द्रियों के विषयों में मन-बुद्धि से तल्लीनतापूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने इस दयनीय परिवेश को सर्वत्र देखा। उन्होंने कहा कि वर्तमान युग के लिए यह सामान्य है। अब हम उस परमात्मा को पाना चाहते हैं, जो सबसे सूक्ष्मतम है। इसका अर्थ है कि हमें आनन्दमय कोश से भी आगे जाना पड़ेगा, जो सभी अन्य कोशों से सूक्ष्म है। हम यह भलीभाँति कल्पना कर सकते हैं कि यह कितना कठिन है।

हमें कठोरता से इसकी दिशा बदलनी होगी। प्राणमय कोश को विपरीत दिशा देनी होगी। प्राणमय कोश की स्वाभाविक दिशा अन्नमय कोश की ओर होती है। यदि हम भगवत्-प्राप्ति करना चाहते हैं, परमात्मा की अनुभूति

करना चाहते हैं, तो प्राणमय कोश को विपरीत दिशा देनी होगी, इसे भगवद्मुखी करना होगा, इसे ईश्वर की दिशा देनी होगी। राजयोग हमें यही शिक्षा प्रदान करता है। किन्तु राजयोग की साधना उतनी सरल नहीं है। यदि हमारा जीवन अनुशासित नहीं होगा, यदि हमारी दिनचर्या नियमित नहीं होगी और दक्ष गुरु नहीं होंगे, तो दिशाहीन राजयोग की साधना हमें संकट में डाल देगी। इसीलिए श्रीरामकृष्ण देव ने घोषणा की, "हम साधारण लोगों के लिए, नारदमुनि द्वारा प्रतिपादित भक्तिमार्ग ही अत्यन्त उपयोगी है। भक्ति का अर्थ है, भगवान, अपने आराध्यदेव को वैसे ही प्रेम करना, जैसा अनुभव हम अपने जीवन में करते हैं। यही नारदीय भक्ति है। हम सभी को अपने जीवन में कुछ-न-कुछ प्रेम का अनुभव है। जैसे हम कुछ सुन्दर चीजें देखते हैं और उसके बाद शान्ति से बैठकर उस दृश्य की कल्पना करके बड़े आनन्दित होते हैं। वैसे ही, भगवान के सम्बन्ध में उनकी गाथाएँ पढ़ना, भगवान की कीर्ति का गुण-गान सुनना, एवं शान्त-चित्त से प्रभु का ध्यान करना, चिन्तन-मनन करना ! यह 'शान्त भाव' है।

इसी तरह, हम इस जीवन में किसी को अपने स्वामी के समान प्रेम करते हैं। हम उनकी सेवा करते हैं। स्वामी के प्रति उस अनन्य सेवा, निष्ठा को 'दास्य भाव' कहते हैं। इसे भी हम अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं।

हमारे मित्र होते हैं। हमारा अपने मित्रों के प्रति कितना गहन आकर्षण होता है ! इसी को 'सख्य-भाव' कहते हैं।

इसी प्रकार वात्सल्य भाव होता है। हम सबका एक नन्हें शिशु के प्रति वात्सल्य भाव होता है। शिशु के प्रति उस पितृवत् प्रेम को वात्सल्य-भाव कहते हैं। इसका भी सबने अनुभव किया है।

इसी तरह एक समर्पित पतिव्रता पत्नी का अपने पति, स्वामी के प्रति प्रेम को 'मधुर-भाव' कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हम सभी किसी एक या अन्य प्रेमभाव का व्यक्तिगत अनुभव करते हैं। यदि इस प्रकार के प्रेमभाव की दिशा को ईश्वर की ओर मोड़ दें, तो वह भक्ति हो जाती है। हम सभी को विदित है कि प्रेम में कितनी महान शक्ति होती है। इस प्रेम में, हम अन्य सब कुछ भूल जाते हैं। इस तरह यदि हम ईश्वरीय प्रेम को बढ़ा सकें, तो यह भक्ति बन जाएगी। परन्तु भगवान को प्रेम करने के लिए, यदि भगवान अनन्त हैं, निराकार हैं, तो हम कैसे उन्हें प्राप्त करें? इसीलिए हम भगवान को किसी रूप में कल्पना करने का प्रयास करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हम अपने आप को उन्नत करते हुए विज्ञानमय कोश के स्तर तक ले जाते हैं, जिसका रूप या गुण आत्मा या परमात्मा के अधिक निकट है।

हम भगवान का नाम-स्मरण करते हैं, जिसे मन्त्र कहते हैं। इसे भी हम 'आनन्दमय कोश' के उच्च स्तर पर स्थापित करने का प्रयास करते हैं, जिसका गुण शब्द (नाम) है। इस प्रकार हम ईश्वर की साकार और नाम के रूप में उनसे प्रेम और उनकी आराधना करने का प्रयास करते हैं। इसका तात्पर्य है कि इस प्रकार हम भगवान की भक्ति के द्वारा अपने प्राणमय कोश की दिशा को भगवान की ओर मोड़ देते हैं। यह मार्ग, राजयोग की तुलना में कितना सरल और सुगम है !

इन सभी भिन्न-भिन्न भावों को हम श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में देखते हैं। इन सभी भावों की साधना श्रीरामकृष्ण देव ने की और अपने जीवन के द्वारा हमें इसकी शिक्षा दी कि इनमें से किसी भी मार्ग की साधना से हम परमात्मा की प्राप्ति कर सकते हैं। हम परमात्मा का साक्षात् दर्शन कर सकते हैं। हम परमात्मा की अनुभूति कर सकते हैं।

परन्तु यदि हम श्रीरामकृष्ण के जीवन का ठीक से अध्ययन करें, तो एक भाव उन्हें सर्वाधिक प्रिय था और वह था 'भगवान को मातृभाव से प्रेम करना।' यह ईश्वर की मातृवत भक्ति करने का भाव उन्हें वंशानुगत प्राप्त नहीं हुआ था। यह गुण उनमें पैतृक नहीं था। क्योंकि श्रीरामकृष्ण देव के पिताजी 'श्रीरघुवीर' के अनन्य भक्त थे। जब श्रीरामकृष्ण देव पहली बार दक्षिणेश्वर आए थे, तब उन्होंने माँ काली के मंदिर का प्रसाद ग्रहण करने से मना कर दिया था। परन्तु धीरे-धीरे ऐसा हुआ जैसे माँ काली ने ही श्रीरामकृष्ण देव को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जैसे श्रीरामकृष्ण देव 'अन्नगत प्राण' से 'मातृगत प्राण' में भावान्तरित हो गये हों। अपनी समर्पित साधना से वे दिव्य माँ काली के एक नन्हें बालक बन गए। ईश्वर को 'माँ' के समान प्रेम करना, भक्ति करना, यह उनकी प्रथम साधना थी। इसके बाद उन्होंने विभिन्न साधनाएँ कीं। एक नन्हा बालक, जब कुछ प्राप्त करता है, तो वह प्रसन्नता से दौड़कर माँ के पास जाकर माँ को बताता है कि उसे क्या, प्राप्त हुआ? इसी तरह श्रीरामकृष्ण देव, सदैव अपनी दिव्य माँ को, सदैव अपनी सभी आध्यात्मिक

साधना की उपलब्धियाँ बताते थे। 'भगवान से मातृवत प्रेम' करने की उपलब्धि उन्होंने कैसे की? हम अनेक बार पढ़ते हैं, प्राय: श्रीरामकृष्ण देव, मंदिर में जाकर, माँ काली से वार्तालाप करते थे। उसके बाद वे मंदिर से बाहर आकर सरलता से कह देते थे, मेरी माँ (काली) से बातचीत हुई। अनेकों भक्त श्रीरामकृष्ण देव को माँ काली के साथ वार्तालाप करते हुए देखा करते थे, शायद वार्तलाप भी सुने होंगे। परन्तु, माँ काली ने क्या कहा, मुझे लगता है कि किसी ने भी नहीं सुना होगा।

अब प्रश्न यह है कि हम भगवान को 'माँ' के समान प्रेम कर सकते हैं, किन्तु क्या भगवान हमें माँ के समान उत्तर देंगे? क्या भगवान नाराज नहीं होंगे? क्योंकि अनेक धर्मानुयाई (इजराईल, ईराक, इजिप्ट, टर्की के निवासी) ईश्वर की नारी के रूप में कल्पना भी नहीं कर सकते। ईश्वर भक्तों की विभिन्न भाव से की गयी भक्ति स्वीकार करते हैं, इसे समझने के लिये मैं अवतार-पुरुषों के जीवन का दृष्टान्त देता हूँ।

यदि हम श्रीराम के जीवन में देखें, तो पायेंगे कि भक्त उनकी दास्य भाव एवं शान्त भाव से उपासना करते हैं। श्रीहनुमानजी 'दास्य भाव' के प्रमुख आदर्श हैं और श्रीराम भी उनकी भक्ति को स्वीकार कर रहे हैं। दास्य-भाव एवं शान्त भाव की भक्ति ही हमारे व्यावहारिक जीवन के लिए अधिक उपयोगी है। क्योंकि विशेषकर हम जब बाहर किसी दूसरे व्यक्ति से मिलते हैं, तब हमारा जीवन निश्चय ही अनुशासित होना चाहिए। इसीलिए भगवान श्रीराम को 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहा जाता है। उनका सम्पूर्ण जीवन शीलवान, बहुत अनुशासित है। किन्तु बाहरी जीवन में दिखावे के लिए भले ही हम बहुत अनुशासित व्यवहार करें, किन्तु हमारे मन में, अनेकों प्रकार के विचार चलते रहते हैं। कई बार हम वासनाओं के द्वारा वहाँ खींचे चले जाते हैं। हम सभी काल्पनिक अनुशासनहीन पात्रों का अभिनय करते रहते हैं। हमारे अन्तर्मन में कहीं कोई मर्यादा, अनुशासन नहीं है। परन्तु यदि हम सच्चा साधक बनना चाहते हैं, तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने आन्तरिक स्वभाव को भी मर्यादित, अनुशासित करने का प्रयत्न करें। इसलिए हम भगवान को 'सखा-भाव' से प्रेम करने का प्रयत्न करते हैं। सखा-भाव का अर्थ है भगवान को मित्र रूप में प्रेम करना। सखा भाव में उनके साथ खेलते हैं, उनसे हँसी-मजाक करते हैं। जैसे एक नन्हा बालक खेल में, मनोरंजन, हँसी करता है, उस प्रकार हम आनन्दित हो सकते हैं। अथवा हम उन्हें अपने प्रिय बालक के समान समझें अथवा अपने प्रिय 'पति' के समान समझें। ये सभी, सखा, वात्सल्य, मधुर, दास्य इत्यादि भाव हमारे अन्त:करण की लीलाएँ हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण को 'लीला पुरुषोत्तम' कहा जाता है। क्योंकि उन्होंने अपने जीवन में इसी प्रकार की लीलाएँ वृन्दावन में की हैं।

मधुर लीला आध्यात्मिक-जीवन की चरम अवस्था है, जहाँ भक्त और भगवान एकाकार हो जाते हैं, या वेदान्त की भाषा में, यह अद्वैत की अवस्था है। अत: स्वाभाविक रूप से प्रत्येक साधक इसी भाव से भगवान को प्राप्त करना पसन्द करते हैं। परन्तु यह कितना कठिन है ! श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, वृन्दावन की गोपियों की लीला समझने के लिये किसी के मन में लेश मात्र भी काम-वासना की गन्ध नहीं होनी चाहिए, चित्त काम-गन्ध-शून्य होना चाहिए। अन्यथा यदि मन वासनाशून्य नहीं होगा, तो हमारी मन:स्थिति ऐसी होगी कि हमारा चित्त भगवान के चिन्तन में अभी-अभी लगा है और अकस्मात् भगवान अन्तर्धान हो जाएँगे और हमारी काम-वासना सक्रिय हो जाएगी। इसीलिए हम ऐसे कुछ आध्यात्मिक साधकों का पतन होते देखते हैं। श्रीरामकृष्ण देव सामान्य लोगों की इस दुर्बलता को जानते थे। इसीलिए उन्होंने एक नया बहुत सरल-सुगम, सुरक्षित मार्ग बताया। वह पथ है 'ईश्वर को माँ के समान प्रेम करना'। यह कितना विलक्षण मार्ग है ! हम गोपियों और श्रीकृष्ण की मधुर भाव की लीलाओं का वर्णन करने में असमर्थ हैं। उन लीलाओं को पढ़ना और वर्णन करना स्वयमेव अत्यन्त कठिन है। परन्तु एक माँ और छोटे बालक के सम्बन्ध का चिन्तन करें। यह कितना अद्भुत है ! यहाँ तक कि इसके बारे में वार्तालाप करने मात्र से कितना सात्विक आनन्द देता है। जब एक नन्हा बालक माँ के पास आता है, तो माँ उसे गोद में ले लेती है, उसे आलिंगन कर चूमती है। नन्हा बालक भी अपने नन्हें हाथों से माँ से लिपट जाता है। यह कितना विलक्षण प्रेम है ! यह प्रेम वासनाशून्य शुद्ध आनन्द देता है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण देव ने वर्तमान युग के लिए 'ईश्वर का मातृत्व' या 'भगवान को माँ के समान प्रेम करना' ऐसा भाव प्रस्तुत किया। **(क्रमश:)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (१)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। उसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – हम लोग श्रीरामकृष्ण का ध्यान करते हैं। किन्तु ठाकुर के तो अनन्त भाव हैं। उनके किस भाव का ध्यान करेंगे?

महाराज – हम लोग ठाकुर का ध्यान करते हैं। ठाकुर के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाएँ हैं। वह तो रहेगा ही, क्योंकि उनमें विचित्रता है, विलक्षणता है। जितना ही हमलोगों में परिवर्तन होता है, उतना ही हमारा आदर्श और अधिक स्पष्ट होता जाता है। आदर्श परिवर्तित होता है। मान लो, जैसे हम दूर से एक भवन अस्पष्ट देख रहे हैं, जैसे कोई ढाँचा हो। हम जितना ही भवन की ओर आगे बढ़ रहे हैं, उतना ही वह भवन स्पष्ट से स्पष्टतर होता जा रहा है।

प्रश्न – ध्यान करते समय आँख क्यों बन्द करनी पड़ती है? क्या ठाकुर की प्रतिमा की ओर देखने से नहीं होगा?

महाराज – आँखें बन्द करनी पड़ती हैं, क्योंकि लगता है कि हम ठाकुर के चित्र की ओर देख रहे हैं, किन्तु साथ-साथ इसको-उसको भी देखते रहते हैं, दृष्टि इधर-उधर चली जा रही है। दृष्टि हमेशा एक स्थान पर नहीं रहती है। बहुत-से लोग एक बिन्दु पर दृष्टि स्थिर करने का प्रयास करते हैं। किन्तु दृष्टि एक बिन्दु पर बहुत देर तक स्थिर नहीं रहती इसीलिए आँखों को बन्द करना पड़ता है। आँख बन्द करने से बाह्य विक्षेप दूर हो जाते हैं। अब केवल आन्तरिक विक्षेपों को दूर करने का प्रयास करना पड़ता है। आँख खुली रखने से भीतर और बाहर दोनों ही विक्षेप रह जाते हैं। इसलिए आँख बन्द करके ध्यान करने से स्वभावत: विक्षेप बहुत कम हो जाता है। ध्यान करते-करते भीतर का विक्षेप दूर हो जाता है। ध्यान अर्थात् विजातीय वृत्ति का निराकरण और सजातीय वृत्ति का उदय होता है। वास्तविक ध्यान में ध्यान, ध्याता और ध्येय एक हो जाते हैं, तब मन नहीं रहता है। क्योंकि मन का अर्थ ही है संकल्प-विकल्प, अर्थात् चंचलता। जब मन बिल्कुल स्थिर हो जाता है, तब मन रहता ही नहीं है। इसीलिए कहते हैं कि ध्याता-ध्येय एक हो जाते हैं।

दूसरी बात है कि ध्यान के समय इष्ट की सत्ता की बात याद रखनी चाहिए। जैसे अभी मैं ठाकुर के समाधि चित्र, समाधि भाव के रूप का ध्यान कर रहा हूँ। पूरा रूप सदा नहीं आ रहा है। कभी मुख देख रहा हूँ, कभी छाती पर का वस्त्र देख रहा हूँ। इस प्रकार करते-करते जब ध्यान प्रगाढ़ होगा, तब ठाकुर का मन, ठाकुर की दृष्टि किस गहराई में हैं, अर्थात् उनकी सत्ता की गहराई में हम लोग भी अवगाहन करेंगे। अभी ठाकुर के चित्र को देखकर हम लोग नहीं समझ पाएँगे कि ठाकुर की दृष्टि किस स्तर की गहराई में हैं। किन्तु जितना ही हमारा ध्यान गहरा, गम्भीर होगा, जितनी ही गम्भीरता से हम चिन्तन करेंगे, उतनी ही ठाकुर की सत्ता का हमें बोध होगा।

प्रश्न – महाराज ! हमलोग तो ध्यान के बिना जप करते हैं। जबकि जप के समय ध्यान करना पड़ता है?

महाराज – ध्यान और जप अलग-अलग नहीं हैं। वास्तव में दोनों एक ही हैं। एकाग्र मन से जप करना ध्यान ही है। इसीलिए जप करते-करते ठाकुर की मूर्ति का ध्यान किया जाता है। ध्यान का अर्थ हमलोग ठाकुर की मूर्ति का चिन्तन करना समझते हैं। ठाकुर की इस बैठी हुई मूर्ति का चिन्तन करना। वास्तव में ध्यान का अर्थ केवल मूर्ति का चिन्तन करना नहीं है। ध्यान है – तत्त्व-चिन्तन, स्वरूप-चिन्तन। ध्यान के समय ठाकुर के स्वरूप का चिन्तन किया

जाता है।

किन्तु लीला-चिन्तन या गुण-चिन्तन करना स्वरूप का चिन्तन नहीं है। जिनकी लीला या जिनके गुण का चिन्तन कर रहा हूँ, उनका चिन्तन करने को तत्त्व-चिन्तन या स्वरूप-चिन्तन कहते हैं। जब हमारा मन पवित्र और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाएगा, तब हम समझ सकेंगे। अभी हमारा मन केवल स्थूल वस्तु पकड़ सकता है। इसलिए हम लोग गुण-चिन्तन कर सकते हैं। किन्तु मन शुद्ध होने पर वह सूक्ष्म वस्तु को समझ सकेगा। तभी ठाकुर का तत्त्व-चिन्तन सम्भव है। जैसे मान लो, ठाकुरजी की बैठी हुई ध्यान मूर्ति है। ठाकुर ने स्वयं कहा है – "यह अत्यन्त उच्च योग की अवस्था है।" क्या हमलोग कुछ समझते हैं? क्यों नहीं समझते हैं? क्योंकि उच्च योग की अवस्था को समझने के लिए योगी होना होगा। हमलोग योगी नहीं हैं, इसीलिये उसे नहीं समझ सकते हैं। किन्तु उस मूर्ति का गम्भीरता से ध्यान करने, देखने और चिन्तन करने से एक बात समझ में आती है। यद्यपि यह पूर्णत: हमारी व्यक्तिगत धारणा या अनुभव है। जैसा मुझे लगता है, वैसा कह रहा हूँ। वह है ठाकुर की गम्भीर अन्तर्मुखता। दोनों आँखें लगभग बन्द हैं। संसार लगता है उनमें लीन हो गया है। बाह्य जगत का कुछ भी बोध नहीं है। कैसी अन्तर्मुखता है। इस अन्तर्मुखी अवस्था में ठाकुर क्या सोच रहे हैं या किसमें निमग्न हैं, उसका ध्यान के समय हमलोगों को भी विचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त ऐसा भी सोचा जा सकता है, जिन्होंने राम और कृष्ण के रूप में युग-युग में जगत-कल्याण हेतु अवतार लिया है, वे ही स्वयं भगवान इस बार माया का आश्रय लेकर नर के रूप में श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतरित हुए हैं। 'शिव-महिम्नस्तोत्र' में एक स्थान पर है – शिव को सम्बोधित कर पुष्पदन्त कह रहे हैं – योगी गण ध्यान में जिस तत्त्व का चिन्तन करते हैं, वह तुम्हीं हो –

मनः प्रत्यक् चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः,
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमद सलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये,
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्।।

अर्थात्, यम आदि से युक्त योगी शास्त्रानुसार प्रणायाम की सहायता से प्रत्यगात्मा में मन को समाहित कर पुलकित तन और आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से जिस अन्त:स्थ अनिर्वचनीय तत्त्व का दर्शन कर अमृतमय हृदय में निमग्न व्यक्ति के समान आह्लादित रहते हैं, वह तुम्हीं हो।

प्रश्न – जप-ध्यान के समय श्रीठाकुर की मूर्ति का चिन्तन करते समय श्रीमाँ की मूर्ति भी बीच-बीच में मन में आती है। किन्तु संदेह होता है कि जब ठाकुर का नाम-जप और उनका ध्यान कर रहा हूँ, तब माँ की मूर्ति के मन में आने पर इस मूर्ति का ध्यान करना उचित है या माँ की मूर्ति को रोककर ठाकुर की मूर्ति को ही मन में लाना उचित है?

महाराज – अनेक लोगों के मन में यह संशय आता है। इसका उत्तर है कि जब ठाकुर जी का नाम-जप कर रहा हूँ, तब ठाकुर की मूर्ति ही फविशेष रूप से मन में आना उचित है। यद्यपि माँ और ठाकुर अभिन्न हैं, माँ ने स्वयं ही कहा है। किन्तु मूर्ति तो भिन्न है। इसलिए जब ठाकुर का चिन्तन करेंगे, तब ठाकुर की मूर्ति का ही चिन्तन करेंगे। उसके बाद माँ का ठाकुर के साथ अभिन्न भाव से चिन्तन कर सकते हैं। एक साथ यह करूँ या वह करूँ ऐसा संशय मन में रखना ठीक नहीं है। मन को एकाग्र करने के लिए जब जप कर रहा हूँ, तब एक मूर्ति में ही मन को लगाना आवश्यक है। लेकिन ठाकुर के शिष्यों ने कभी-कभी एक ही व्यक्ति को दो मन्त्र प्रदान किया है। इसमें एक साथ दो मन्त्रों का जप करना सम्भव नहीं है। वहाँ पहले ठाकुर के मन्त्र का जप कर उसके बाद माँ के मन्त्र का जप करना होगा। तुमलोग जो पूछ रहे हो, उसमें ठाकुर के मन्त्र का जप करते समय ठाकुर की मूर्ति का ही चिन्तन किया जाता है। उसके बाद इच्छा हो, तो माँ की मूर्ति का चिन्तन कर सकते हो। इसके लिये अलग से किसी मन्त्र-जप करने की आवश्यकता नहीं है। यह वास्तविक बात है। लेकिन यदि गुरु से कोई अन्य निर्देश मिला हो, तो उनके निर्देशानुसार ही चलना। उसमें कोई संशय मत करना।

(क्रमशः)

जनवरी माह के जयन्ती और त्योहार

०१	श्रीमाँ सारदा देवी, कल्पतरु दिवस
०५	स्वामी शिवानन्द
१५	स्वामी सारदानन्द
१६	गुरु गोविन्द सिंह
२३	स्वामी तुरीयानन्द
३१	स्वामी विवेकानन्द

महान लोक-शिक्षक स्वामी विवेकानन्द

डॉ. किरण सिन्हा

'नवभारत का उदय होने दो। उसका उदय हल चलाने वाले किसानों की कुटिया से, मछुओं, मोचियों और मेहतरों की झोपड़ियों से हो। बनियों की दुकान से, रोटी बेचने वाले की भट्टी के पास से प्रगट हो। कारखाना, हाटों और बाजार से वह निकले। वह नवभारत, अमराइयों और जंगलों से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो।'

स्वामी विवेकानन्द, इस प्रकार नव भारत का उदय चाहते हैं। भारत का वे सर्वतोमुखी विकास चाहते हैं और उसके लिए राष्ट्र की सच्ची शक्ति उसकी महान जनता को वे जगाना चाहते हैं। भारत के दुखी, पीड़ित, शासित, भूखों और अज्ञान पीड़ित जनता को देखकर स्वामी विवेकानन्द का अन्त:करण चीत्कार कर उठता है और वे कठोर शब्दों में उद्घोषणा कर उठते हैं, जब तक करोड़ों मनुष्य भूखे और अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और अब उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।' विवेकानन्द जन समुदाय की ऐसी अवहेलना को महान राष्ट्रीय पाप और अपराध मानते हैं। इसके लिए तथाकथित मान्य कहे जाने वाले मुट्ठीभर लोगों को वे दोषी ठहराते हैं, जिस वर्ग ने शेष समुदाय का रक्त शोषण किया है। उन्होंने स्पष्ट कहा, 'भारत वर्ष के पतन का मूल कारण यह है कि देश की सम्पूर्ण विद्या, बुद्धि, राज, शासन और दया केवल मुट्ठी भर लोगों के अधिकार में रखी गई है।' आगे वे कहते हैं, यदि हम पुन: उन्नत होना चाहते हैं, तो जनसमूह में शिक्षा का प्रचार करके ही वैसे हो सकते हैं। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने जनशिक्षा के महत्व पर सर्वाधिक बल दिया है। वे लोक-शिक्षण को राष्ट्र की सहानुभूति का मूल कारण मानते हैं।

स्वामी विवेकानन्द भारत वर्ष के उन महान सन्तों, दार्शनिकों, शिक्षा-शास्त्रियों तथा लोक-शिक्षकों में हैं, जिन्होंने देश की परिस्थितियों को प्रत्यक्ष रूप में देखने का प्रयास किया। स्वामी विवेकानन्द संन्यासी बनकर भारत के गाँव-गाँव, नगर-नगर में घूम-घूमकर सामान्य लोगों के जन-जीवन से अपने को एकाकार करते रहे, उन्होंने दुख-कष्ट झेलते हुए लोगों की दुख-दारिद्र्यपूर्ण परिस्थितियों का अनुभव किया। इस प्रकार क्रान्तिकारी लोक-शिक्षक की भूमिका का निर्वाह करते हुए उन्होंने लोगों को विषम परिस्थितियों से जूझने के लिए तैयार करने की हर अन्तिम कोशिश की। उन्होंने लोगों में चेतना की ध्वनि-जागृति की और कर्मक्षेत्र में उतरने की शंख-ध्वनि भी। इसके लिए अपने संन्यासी कार्यकर्ताओं को उन्होंने यह स्मरण दिलाते हुए निरन्तर सचेष्ट किया कि हमारा राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है। उन्हें अपने कर्तव्य का भी बोध कराया। अपने व्याख्यान में वे कहते हैं – वर्तमान में तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम देश के एक भाग से दूसरे में जाओ और गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाओ कि अब आलस्य के साथ केवल बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। जाओ और उन्हें अपनी अवस्था सुधारने की सलाह दो। शास्त्रों की बातों को विशद रूप से सरलतापूर्वक समझाते हुए उदात्त सत्यों का ज्ञान कराओ। इस प्रकार, लोक-शिक्षक विवेकानन्द समाज की प्रयोगशाला में समाजशास्त्री वैज्ञानिक की तरह समाज के सत्यों का निरन्तर प्रयोग करते दिखते हैं।

स्वामी विवेकानन्द भारत के आदर्श के अनुरूप भारत के जन साधारण को बिना किसी भेदभाव के ऊपर उठाना चाहते थे। उनमें आत्मपौरुष और आत्मविश्वास को जागृत करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने लोक-शिक्षण के माध्यम से लोगों को जगाने का व्रत लिया। शिक्षा में सबको समान अवसर प्राप्त हो, ऐसी उनकी मान्यता थी। उनके अनुसार, समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या, और ज्ञान का उपार्जन करने के लिये एक समान अवसर मिलना चाहिए। उनका यह दृढ़ मत था कि राष्ट्र उसी मात्रा में प्रगति करता है, जिस मात्रा में जनसाधारण में शिक्षा तथा योग्यता का विकास होता है और समाज-उत्थान के लिए यही एक मात्र विकल्प है। स्वामी विवकोनन्द ने स्पष्टत: यह स्वीकार किया है कि हम कितनी ही राजनीति बरतें उससे उस समय तक कोई लाभ न होगा, जब तक कि भारतवर्ष का जनसमुदाय एक बार फिर शिक्षित, सुपोषित और सुपालित नहीं होता। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द शिक्षा के माध्यम से जनता-जनार्दन तक पहुँचना चाहते थे। उनका यह स्पष्ट मत था कि शिक्षा को प्रत्येक के पास

पहुँचाना है और भारत के प्रत्येक को शिक्षित होना है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द का अभिमत उल्लेखनीय है। उनका कहना है, शिक्षा स्वयं दरवाजे-दरवाजे क्यों न जाय? यदि खेतिहर का लड़का शिक्षा तक नहीं पहुँच पाता, तो उसके हल के पास या कारखाने में अथवा जहाँ भी हो, वहीं क्यों न भेंट की जाय। जाओ उसी के साथ उसकी परछाई के समान। भारतीय जन-जीवन के परिप्रेक्ष्य में जन-शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द का यह एक क्रांतिमूलक व्यावहारिक दृष्टिकोण है। यह स्पष्ट स्वीकार किया जायेगा कि स्वामीजी एकमात्र भारतीय शिक्षा-दार्शनिक हैं, जिन्होंने जन-शिक्षा के सम्बन्ध में एक स्पष्ट विचार प्रस्तुत किया, जिससे वर्तमान शिक्षा-पद्धति के कई आयाम प्रभावित भी हुए हैं। आवश्यकता है विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित जन-शिक्षा की योजना को अनुकूल अवसर प्रदान कर कार्यान्वित करने की।

स्वामी विवेकानन्द जन-साधारण की शिक्षा के लिये औपचारिक शिक्षा-संस्थाओं की आवश्यकता नहीं महसूस करते थे, क्योंकि लोकशिक्षा सर्वांगपूर्ण जीवन-धारा है, जो प्रतिक्षण प्रवाहित है। एतदर्थ ऐसे बालको, वयस्कों, प्रौढ़ों के लिये जो जीविका सम्बद्ध उत्पादक कार्यों में लगे रहते हैं, विवेकानन्द ने सन्ध्याकालीन शिक्षण का व्यावहारिक प्रस्ताव रखा। परन्तु इस प्रकार का शिक्षण जीवन से असम्पृक्त पूर्णत: सैद्धान्तिक रीति से सम्पादित नहीं होगा, अपितु उपलब्ध वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग द्वारा गत्यात्मक और प्रभावी रीति से दिया जा सकेगा। ताकि अनुकूल परिस्थिति में शिक्षण-प्रक्रिया स्थायी प्रभाव छोड़ सकने में समर्थ हो। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने लोक-शिक्षण की जो व्यापक कल्पना की है, उसका क्रियान्वयन किसी बंद कमरे में नहीं हो सकता।

लोक-शिक्षण के कार्यक्रमों की सफलता शिक्षण के माध्यम पर बहुत दूर तक आधारित है, अवस्थित है। विवेकानन्द ने शिक्षण के माध्यम के रूप में मातृभाषा के महत्त्व को स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है जन-साधारण को उनकी निजी भाषा में शिक्षा दो, उनके सामने विचार को रखो, वे जानकारी प्राप्त कर लेंगे। उनके अनुसार मातृभाषा के द्वारा दी गयी शिक्षा सहज ग्राह्य और टिकाऊ होती है। उन्होंने संस्कृत शिक्षा की आवश्यकता पर भी बल दिया है।

किसी भी राष्ट्र की जीवित आत्मा वहाँ की लोकशक्ति होती है। लोकशक्ति के सहज स्वाभाविक निर्माण में लोक शिक्षण की बड़ी गहरी भूमिका होती है। स्वामी विवेकानन्द लोक शिक्षण के माध्यम से सबल लोकशक्ति संघटित करना चाहते थे, ताकि उनकी परिकल्पना का नया समाज साकार रूप ग्रहण कर सके। लोक-शिक्षण के रूप में स्वामी विवेकानन्द की शैक्षिक विचारधारा उदात्त, विराट और क्रान्तिमूलक है। हम भारत में आयोजित जिस समाजवादी समाज की रचना को मूर्तरूप देने के लिए संघर्षरत हैं, उसकी मानसिकता को तैयार करने के लिए स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित लोक-शिक्षण के मूर्त रूप को यथावत् व्यावहारिक रूप देना आवश्यक होगा। उन्होंने जनता की शिक्षा को महत्व देकर वास्तव में जर्जर भारत की आत्मा में एक सजीवता की प्राण प्रतिष्ठा की। वे दूरदर्शी स्वप्नद्रष्टा थे। उनका प्रत्येक शब्द सबल भारत के नव निर्माण की प्रेरणा देता है। उन्होंने भारत की जनता को, अपने अन्तर्मन की विशिष्ट ऊँचाईयों से देखा-परखा और लोक-शिक्षण के द्वारा लोक शक्ति के संघटन का संकल्प लिया। उन्होंने कहा पहले लोकशक्ति को संघटित करो। अतएव, समाज सुधार के लिये भी प्रथम कर्तव्य है, लोगों को शिक्षित करना। जब तक यह कार्य सम्पन्न नहीं होता, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

आधुनिक भारत के निर्माताओं में सजग स्वामी विवेकानन्द निर्धन एवं अशिक्षित जनता के महान सारथी थे। उन्होंने राष्ट्र में दशकों से उत्पन्न व्याप्त अव्यस्था, फैली हुई धर्मान्धिता एवं थोड़े से प्रबुद्ध वर्ग की कैद में बन्द शिक्षा की मशाल अपने हाथ में लेकर अभावग्रस्त वर्ग के बीच उसकी आन्तरिक ज्योति को फैलाने का प्रयास किया था। शिक्षा के द्वारा जन-साधारण की भवितव्यता को उन्होंने पहचाना था। जन-शिक्षा के उनके विचारों से आर्यावर्त का विराट जाग्रत हुआ था।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनता की अज्ञानता को दूर करने के लिए जो भी कुछ कहा और किया वह एक महान लोक-शिक्षक के दस्तावेज के रूप में प्रकट है। ○○○

(यह लेख पटना से प्रकाशित होने वाले आर्यावर्त, १२ जनवरी, १९८५, पृष्ठ ४ से उद्धृत है।)

डॉ. अब्दुल कलाम और युवाशक्ति

जोसेफाइन मेक्लाउड स्वामी विवेकानन्द को अपना मित्र मानती थीं। उन्होंने एकबार स्वामीजी से पूछा, 'मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ? स्वामीजी का दो टूक उत्तर था, Love India – "भारत से प्रेम करो।"

उस समय भारत देश स्वतन्त्र नहीं हुआ था। सहस्रों वर्षों की दासता ने भारतवासियों की आत्मश्रद्धा को गहरा आघात पहुँचाया था। राष्ट्र-प्रेम और स्वधर्म-प्रेम तथाकथित आधुनिक लोगों के लिए एक उपहास का विषय बन गया था। स्वामी विवेकानन्द की ओजस्वी वाणी ने भारत की सुप्त आत्मा को झकझोरा और उसे नवचेतना प्रदान की। उनके अनुसार स्वार्थरहित और समर्पित भाव से किए गए कर्म द्वारा मनुष्य महानतम अवस्था प्राप्त कर सकता है, किन्तु इसकी आधारशिला नैतिक और धर्मपारायण होनी चाहिए।

भगिनी निवेदिता ने स्वामीजी के बारे में कहा था, "उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, खेत और क्रीड़ाभूमि आदि ईश्वर-साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम और योग्य स्थान हैं, जैसे साधु की कुटिया या मन्दिर का द्वार।"

स्वामी विवेकानन्द के इस महान सन्देश को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारतवासी ग्रहण कर रहे हैं। डॉ. कलाम में हम राष्ट्र-प्रेम, शास्त्र-प्रेम और गुरु-निष्ठा का अद्भुत सम्मिश्रण पाते हैं। वे स्वामी विवेकानन्द के युगोपयोगी विचारों से बहुत प्रभावित थे। १ अक्तूबर, २०१४ को डॉ. कलाम जी ने रामकृष्ण मिशन के कोलकता स्थित स्वामी विवेकानन्द के पैतृक निवास में एक सांस्कृतिक भवन का उद्घाटन किया।

इस अवसर पर सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था, 'मित्रो, स्वामी विवेकानन्द के इस पवित्र पैतृक निवास में मुझे एक घटना का स्मरण हो रहा है। यह घटना १८९३ में बम्बई से यूरोप जा रहे जहाज में हुई थी। दो महान व्यक्ति इस जहाज में यात्रा कर रहे थे। वे थे, स्वामी विवेकानन्द और जमशेदजी टाटा। स्वामीजी उन्हें कहते हैं कि वे अपने देश में ही कल-कारखानों एवं तकनीकी प्रणाली का विकास करें। ...इस प्रसंग में हम स्वामी विवेकानन्द के महान व्यक्तित्व की झलक पाते हैं। वे भारत को एक सुदृढ़ और विकसित देश के रूप में देखना चाहते थे। विज्ञान, तकनीक और उद्योग-कारखानों की उपयोगिता का स्वामीजी ने स्पष्ट अनुभव किया था। स्वामीजी ने ही जगदीशचन्द्र बोस को उनके आविष्कारों को एकस्व-अधिकार (पेटन्ट) करने की प्रेरणा दी थी। भारत के नवजागरण के लिए स्वामीजी का सन्देश केवल आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित न होकर सर्वांगीण दृष्टि से आर्थिक और सामाजिक स्तर पर भी था।'

डॉ. कलाम ने विज्ञान, कला, शिक्षा, तकनीकी एवं अध्यात्म के क्षेत्र में भारत की महान विभूतियों का गहराई से अध्ययन किया था। उन्होंने आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य इत्यादि के जीवन एवं कार्य का भी अध्ययन किया था। स्वदेश और समूचे विश्व के प्रति इनके अद्भुत योगदान को बताते हुए वे अल्बर्ट आइन्स्टीन के इन वाक्यों को उद्धृत करते थे, 'हम भारतवासियों के ऋणी हैं, जिन्होंने हमें गणना करना सिखाया, जिसके बिना कोई भी वैज्ञानिक खोज सम्भव नहीं है।'

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि सर्वप्रथम भारतवासियों को अपने अतीत का स्मरण होना चाहिए। अतीत की गौरवान्वित स्मृति से व्यक्ति में बल का संचार होता है। डॉ. कलाम के अनुसार यदि बच्चों और युवकों को यह ज्ञात नहीं हो कि वे एक गौरवशाली भारत के आदर्श नागरिक हैं, तो वे कैसे एक सुयोग्य और प्रबुद्ध नागरिक बन सकेंगे? जापान, इंग्लैण्ड का एक बच्चा अपनी संस्कृति और देश पर गर्व अनुभव करता है। हमें भी अपने ऋषियों की सांस्कृतिक धरोहर, अपनी भारतीयता पर गर्व अनुभव करना चाहिए।

जिस प्रकार भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में महात्मा गाँधी, सुभाष चन्द्र बोस इत्यादि का नाम प्रसिद्ध था, उसी तरह कला और विज्ञान के क्षेत्र में जगदीशचन्द्र बोस, रविन्द्रनाथ टैगोर, सी. वी. रामन, मेघनाद साहा इत्यादि का नाम प्रसिद्ध था। केवल धर्म, राजनीति इत्यादि की चर्चा करने से देश का विकास नहीं होता। देश का सर्वांगीण विकास तभी होगा, जब प्रत्येक देशवासी की क्षमताओं का विभिन्न क्षेत्रों में सकारात्मक विकास हो, जिससे वे अपने भीतर निहित देवत्व को प्रकट कर सकें।

डॉ. कलाम के शब्दों में कहें तो, "किसी भी समाज के विकास के लिए दो बातें आवश्यक हैं। वे हैं, धनोपार्जन द्वारा समृद्धि और मनुष्य-जाति के नैतिक मूल्यों का पालन। इन दोनों का सम्मिश्रण राष्ट्र को शक्ति-सम्पन्न और समृद्ध बनाएगा।"

देश के प्रति डॉ. कलाम का विशुद्ध प्रेम था। उन्होंने अपना शेष जीवन देश के युवाओं और बच्चों को प्रेरणा देने में बिता दिया। एक बार एक बच्चे ने डॉ. कलाम से पूछा कि क्या उन्होंने महाभारत ग्रन्थ पढ़ा है? कलाम जी के हाँ कहने पर बच्चे ने पूछा कि उन्हें महाभारत में किसका चरित्र सबसे प्रिय है? कलाम जी ने कहा कि वे महात्मा विदुर के चरित्र से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। विदुर जी ने कौरव वंश में हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध निर्भीकता से आवाज उठाई थी।'

डॉ. कलाम के अनुसार आज जो बच्चे हैं, वे ही भारत का भविष्य हैं। उनके अन्दर ऊर्जा और शक्ति का विशाल भण्डार है। बच्चों के अभिभावक, शिक्षकों का यह कर्तव्य है कि उनकी इस सुप्त शक्ति को उचित दिशा दी जाए, जिससे भविष्य में वे एक सुयोग्य व्यक्ति बनकर अपने परिवार और देश का कल्याण कर सकें। डॉ. कलाम जहाँ भी व्याख्यान आदि देने के लिए जाते थे, वहाँ उनका प्रश्नोत्तरी का सत्र अवश्य रहता था। वे जानना चाहते थे, भारत की वर्तमान पीढ़ी के बच्चे और युवक देश के बारे में क्या सोचते हैं?

एकबार उन्हें असम के तेजपुर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में बुलाया गया। कार्यक्रम के बाद वे विद्यालय के बच्चों को सम्बोधन करने गए। एक छात्र ने उनसे बहुत ही रोचक प्रश्न पूछा, ''क्या बाढ़-ग्रस्त ब्रह्मपुत्र नदी का जल राजस्थान और तमिलनाडू जैसे कम पानी वाले क्षेत्रों में परिवर्तित किया जा सकता है?'' यह प्रश्न सुनकर डॉ. कलाम आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने बाद में इसके बारे में कहा कि यदि प्रधानमन्त्री को भी यह प्रश्न पूछा गया होता, वे भी इसका कोई उत्तर नहीं दे पाते। केवल छात्र ही इस प्रकार के अद्भुत प्रश्न पूछ सकते हैं? उन्होंने उस छात्र से कहा, ''उनके 'इण्डिया विजन २०२०' में युवाओं से यह अपेक्षा की गई है कि वे विभिन्न राज्यों की नदियों को जोड़ने का बृहत् अभियान आरम्भ करें।''

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि महान कार्य के लिए महान त्याग की आवश्यकता है। यहाँ त्याग का अर्थ अपनी शक्तियों को एकाग्र करना है। एक सफल वैज्ञानिक अथवा इंजिनीयर, कोई भी हो, अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित करता है। इसके लिए हमारा चरित्र दृढ़ होना चाहिए। दृढ़ चरित्र के लिए हमारे सम्मुख एक ज्वलन्त आदर्श होना चाहिए। एक ऐसा आदर्श व्यक्तित्व जिनसे हमें निरन्तर प्रेरणा प्राप्त हो सके। विश्वकवि गुरु रविन्द्रनाथ टैगोर ने स्वामी विवेकानन्द के बारे में कहा था, ''यदि आप भारत को समझना चाहते हैं, तो विवेकानन्द का अध्ययन कीजिए, उनमें सब कुछ सकारात्मक है, नकारात्मक कुछ भी नहीं।''

डॉ. कलाम छात्रावस्था में और बाद में एक वैज्ञानिक के रूप में भी अपने शिक्षकों से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। वे शिक्षक अपने-अपने क्षेत्र में आदर्श स्वरूप थे। अपनी पुस्तकों में अपने शिक्षकों की उन्होंने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अपने वैज्ञानिक जीवन में वे डॉ. एस कोठारी, डॉ. होमी भाभा, डॉ. विक्रम साराभाई, प्रो. सतीश धवन के प्रति अत्यधिक आकर्षित हुए थे। इन महान व्यक्तियों के सामने एक ही लक्ष्य था – तकनीकी अथवा विज्ञान के क्षेत्र में भारत का विकास और वैश्विक स्तर पर उसका योगदान।

डॉ. कलाम जून २००१ को अहमदाबाद की स्वामीनारायण संस्था के प्रमुखस्वामीजी महाराज से मिलने गए। दोनों महान व्यक्तियों के बीच अद्भुत संवाद हुआ। डॉ. कलाम विज्ञान-जगत के शीर्ष स्थल पर थे, तो प्रमुखस्वामीजी महाराज अध्यात्म-जगत के एक महान सन्त थे। विदाई के समय प्रमुखस्वामीजी महाराज ने डॉ. कलाम से कहा, ''आप भी एक ऋषि ही हैं।''

डॉ. कलाम के ऋषि-तुल्य व्यक्तित्व की झलक एक छोटी-सी घटना द्वारा यहाँ प्राप्त होती है। एकबार उनसे ईद के अवसर पर पूछा गया कि इस पवित्र दिवस पर आपकी प्रार्थना क्या हो सकती है? उन्होंने कहा, 'अपने अध्यापकों, मित्रों, सम्बन्धियों के अच्छे स्वास्थ्य और कल्याण के साथ-साथ मैं यह प्रार्थना करता हूँ –

'हे ईश्वर ! मेरे देशवासियों के मन में कार्य और विचारों की ऐसी भावना जगे कि वे एकतापूर्वक रह सकें।'

'मेरे देश के सभी धार्मिक नेताओं की सहायता करो, जिससे वे लोगों को विभाजन की ताकतों पर विजय प्राप्त करा सकें।'

'नेताओं और जनता के मन में भाव जगे कि देश किसी भी व्यक्ति से बड़ा है।'

'हे ईश्वर ! मेरे देशवासी राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिये कर्मशील बनें।' ○○○

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

६८. हृदय में सहानुभूति होनी चाहिये

तुम चाहे हजारों समितियाँ गठित करो, या बीस हजार राजनैतिक सम्मेलन करो, या फिर पचास हजार संस्थाएँ गढ़ डालो; परन्तु तब तक इन सबका कोई फल न होगा, जब तक कि तुम्हारे हृदय में सबका ध्यान रखने वाली उस सहानुभूति और उस प्रेम का उदय नहीं होता, जब तक भारत को एक बार फिर बुद्ध का हृदय प्राप्त नहीं हो जाता और जब तक भगवान कृष्ण की वाणी को व्यावहारिक जीवन में नहीं अपनाया जाता, तब तक हमारे लिए कोई आशा नहीं है। तुम लोग यूरोपवासियों तथा उनकी सभा-समितियों का अनुकरण करते रहते हो, परन्तु मैं तुम्हें एक घटना बताता हूँ, एक ऐसी घटना जिसे मैंने अपनी आँखों से देखी है।

यहाँ के कुछ लोग बर्मी लोगों की एक टोली को लन्दन ले गये। बाद में पता चला कि वे ले जाने वाले लोग यूरेशियन थे। वहाँ उन्होंने इन लोगों की एक प्रदर्शनी लगाकर खूब धन कमाया और अन्त में सारा धन आपस में बाँटकर उन लोगों ने बर्मी लोगों को यूरोप के किसी अन्य देश में ले जाकर छोड़ दिया। वे बेचारे यूरोप की किसी भाषा का एक शब्द भी नहीं जानते थे। लेकिन आस्ट्रिया के अंग्रेज वाणिज्य-दूत ने उन्हें लन्दन भेज दिया। वे लोग लन्दन में भी किसी को नहीं जानते थे, अत: वहाँ पहुँचकर असहाय अवस्था में पड़ गये। एक अंग्रेज महिला को इनकी सूचना मिली। वे बर्मा के इन विदेशियों को अपने घर ले गयीं और अपने कपड़े, अपना बिस्तर तथा जो भी आवश्यक था, सब उपलब्ध कराया; और सारी बातें लिखकर समाचार-पत्रों में भेज दीं। इसका अद्भुत फल हुआ ! अगले दिन पूरा देश इस विषय में सचेत हो गया। चारों ओर से आर्थिक सहायता आने लगी और इस सहयोग के फलस्वरूप उन सभी को बर्मा वापस भेज दिया गया।

उनकी सभी राजनीतिक और अन्य सभा-समितियाँ इसी तरह की सहानुभूति पर प्रतिष्ठित हैं; वे कम-से-कम अपने लोगों के लिए प्रेम की सुदृढ़ नींव पर खड़ी हैं। वे लोग सारी दुनिया से भले प्रेम न करें और बर्मी लोग भले ही उनके शत्रु हों; परन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इंग्लैंड में उनकी अपनी जनता के प्रति उनमें अगाध प्रेम है और वे अपने द्वार पर आये हुए विदेशियों के साथ भी सत्य, न्याय और दयापूर्ण व्यवहार करते हैं। पश्चिमी देशों के सभी स्थानों पर जिस आत्मीयता के साथ मेरा स्वागत-सत्कार किया गया, उसका यदि मैं उल्लेख न करूँ तो यह मेरी अकृतज्ञता होगी। हमारे यहाँ वह हृदय कहाँ है, जिसकी बुनियाद पर राष्ट्र-रूपी दीवार खड़ी की जाय? हम पाँच लोग मिलकर एक छोटी-सी सम्मिलित पूँजी की कम्पनी खोलते हैं और कुछ दिनों के भीतर ही हम एक-दूसरे को धोखा देना शुरू कर देते हैं। इसके फलस्वरूप पूरा कारोबार ही नष्ट हो जाता है। तुम लोग अंग्रेजों के अनुकरण की बात कहते हो और उन्हीं के समान एक विशाल राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हो, परन्तु तुम्हारे पास नींव कहाँ है? हमारी नींव बालू से बनी है, इसीलिए उस पर जो भी भवन खड़ा किया जाता है, वह थोड़े ही दिनों में गिरकर बिखर जाता है। (५/३१९-३२०)

हर बात अनुपम थी उनकी

प्रो. आर. सी. पटले

विवेकानन्द अलौकिक थे, हर बात अनुपम थी उनकी।
अनुपम ज्ञान था उनका, और वाणी अनुपम थी उनकी।।
स्वामी उनके रामकृष्ण, गुरुभक्ति अनुपम थी उनकी।
धर्म के प्रति निष्ठा अनन्य, राष्ट्रभक्ति अनुपम थी उनकी।।
शिकागो के सम्मेलन में, हर वाणी अनुपम थी उनकी।
व्यक्तित्व अनुपम था उनका, शक्ति अनुपम उनकी।।
वेदान्त के वे मर्मज्ञ थे, परिभाषा अनुपम थी उनकी।
सागर-से वे विशाल थे, आभा अनुपम थी उनकी।।
अनुपम था दर्शन उनका और भावना अनुपम थी उनकी।
वे महान दिव्य चेतना थे, जीवन-लीला अनुपम थी उनकी।।

विद्यार्थी प्रार्थना कैसे करें?

स्वामी पुरुषोत्तमानन्द

जून के महीने में स्कूल खुल जाते हैं। कक्षाओं में बैठना और पढ़ाई करने का क्रम आरम्भ हो जाता है। डेढ़ महीने की छुट्टी के बाद विद्यार्थीगण अब एकाग्रतापूर्वक अध्ययन में लग जाते हैं। बहुत से साधारण स्तर के विद्यार्थी कुछ अधिक समय छुट्टी के मनोभाव में रहते हैं, किन्तु सच्चे और निष्ठावान विद्यार्थी तुरन्त अध्ययन में लग जाते हैं।

किन्तु जैसे-जैसे वर्ष बीतता जाता है, इस तरह के अनेक निष्ठावान विद्यार्थी 'परीक्षा के बुखार' (Exam Fever) से ग्रस्त हो जाते हैं। निरन्तर ढेर सारी पुस्तकों को पढ़ने और उनके विषयों को स्मरण करने के प्रयास में अनेक विद्यार्थी बुरी तरह थक जाते हैं। कुछ विद्यार्थियों की शिकायत रहती है कि वे अपने विषयों को अच्छी तरह से समझ नहीं पाते। लगभग सभी विद्यार्थियों के ये समान प्रश्न हैं। ऐसी बात नहीं है कि इन प्रश्नों का कोई समाधान नहीं है, किन्तु इनके उचित उपायों को जानने के लिए आपको दृढ़ता और धैर्यपूर्वक उनके बारे में सोचना होगा। आप लोगों ने इनमें से कुछ प्रश्नों के उत्तर '*एकाग्रता का रहस्य*' और '*विद्यार्थी को पत्र*' पुस्तिका में पढ़े होंगे। अब, हम आपके सामने एक और महत्त्वपूर्ण उपाय प्रस्तुत करते हैं।

यह सचमुच में एक प्रभावी उपाय है, और एक दृष्टि से बहुत सरल भी है, किन्तु इसके लिए नित्य अभ्यास की आवश्यकता है। आपको जैसा यहाँ बताया जाए, प्रतिदिन वैसा करें, इतना पर्याप्त है। वह कौन सा उपाय है? वह है प्रार्थना।

सामान्यत: प्रार्थना भगवान से की जाती है। वे भगवान अथवा ईश्वर कौन हैं और कहाँ हैं ? वे हमारे हृदय में हैं। आप उनकी कल्पना राम, कृष्ण, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती, ईसा या अन्य किसी भी रूप में अपने हृदय में कर सकते हैं। ईश्वर का जो रूप आप अपने हृदय में देखते हैं, यह पूर्णतया आपकी रुचि के ऊपर निर्भर करता है। आप जिस रूप को अत्यधिक पसन्द करते हैं, उसे इष्ट कहते हैं। ईश्वर सर्वत्र और सर्वशक्तिमान हैं। वे सर्वज्ञ हैं और सब पर दया करने वाले हैं। वे सर्वशक्तिमान हैं, इसलिए हमारी प्रार्थना सुनना उनके लिए बच्चों का खेल मात्र है। वे सब पर दया करने वाले हैं, इसलिए वे हमारी प्रार्थनाएँ अनसुनी नहीं कर सकते। किन्तु हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उन पर श्रद्धा करें और यह विश्वास करें कि वे निश्चय ही हमारी प्रार्थनाओं का उत्तर देंगे।

अब प्रश्न यह है कि, विद्यार्थी कैसे प्रार्थना करें ? प्राय: हम जो चाहते हैं, उसी की प्रार्थना करते हैं। विद्यार्थी ज्ञान चाहते हैं। वे चाहते हैं कि वे जो कुछ भी पढ़ें, उन्हें वह समझ में आ जाए। वे परीक्षाओं में अच्छे अंको से उत्तीर्ण होना चाहते हैं। क्या ऐसा नहीं है? इसलिए विद्यार्थियों को भगवान से इन्हीं वस्तुओं के लिए प्रार्थना करनी चाहिए –

हे भगवान ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। कृपया मेरा मन पढ़ाई में सदैव लगा रहे। मैं जो कुछ भी पढ़ूँ, वह मुझे समझ में आ जाए। मेरी स्मृति तेज हो, मैं जो कुछ भी पढ़ूँ और समझूँ, उसका मुझे स्मरण हो। मैं एक अच्छा विद्यार्थी बन सकूँ। हे भगवान, मैं आपका शरणागत हूँ। मैं आपके ऊपर निर्भर हूँ। मुझ पर दया कीजिए और मेरी प्रार्थनाएँ सुनिए।

प्रार्थना करते समय आँखें बन्द करना लाभदायी होता है। इसका कारण यह है कि आँखें जब खुली रहती हैं, तब बाह्य प्रकाश और वस्तुएँ हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं, मन को व्यस्त रखती हैं और उसे अपने विषय में एकाग्र नहीं होने देतीं। इसलिए हमें अपनी आँखें बन्द रखनी चाहिए और अपने हृदय और आत्मा में स्थित दयामय भगवान से निष्ठापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए।

जो विद्यार्थी सचमुच में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे सोने से पहले इस प्रकार प्रार्थना करें, तीन महीने तक ऐसा करें और स्वयं इस प्रयोग की उपयोगिता को परख लें। यह निश्चित है कि अल्प समय में भी किए गए इस अल्प परिश्रम के द्वारा वे इसके सुखद परिणामों का अनुभव

(शेष भाग पृष्ठ ४१ पर)

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

प्रश्न ४५. : मौन से क्या लाभ होता है?

उत्तर – अधिकांश बार हमें या तो ज्ञान नहीं होता अथवा उस ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता कि बोलने में भी पर्याप्त शक्ति लगती है। बोलना मनुष्य के लिए श्वास-प्रश्वास की तरह स्वाभाविक प्रक्रिया है। किन्तु श्वास-प्रश्वास पर हमारा अधिकार नहीं होता। किन्तु बोलने और न बोलने पर हमारा पूर्ण अधिकार होता है। किन्तु अभ्यास न होने के कारण हमलोग बहुत-सी व्यर्थ की अनावश्यक बातें बोलते रहते हैं, जिससे हमारी शक्ति का अपव्यय होता है। उतना ही नहीं, अपितु अधिक बात-चीत से कभी-कभी मित्रता भी टूट जाती है। अत: शक्ति-संचय करने के लिए कम बोलना परम आवश्यक है। जब आवश्यकता हो, तो अवश्य बोलें, किन्तु बोलने के पूर्व यह ध्यान दें कि जो कुछ हम बोल रहे हैं, उसे बोलने के पहले हमने समझ लिया है क्या? परिणाम न जानने के कारण अनेक बार हमलोग अनावश्यक तथा निरर्थक बातें ही अधिक करते हैं। अपनी वाक्शक्ति को नष्ट होने से बचाने के लिये हमें मौन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। मौन अपने आप में एक अत्यन्त श्रेष्ठ गुरु है, इसलिए हम अधिक-से-अधिक सुनने का तथा कम-से-कम बोलने का अभ्यास करें। इससे हमारे बहुत बोलने की आदत अपने आप चली जाएगी तथा वाक्शक्ति का अपव्यय बच जाएगा।

प्रश्न ४६. – स्वामी विवेकानन्द जी राजनीति में क्यों नहीं आए? दीपेश देवांगन

उत्तर : राजनीति सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का एक सामान्य भाग है । स्वामीजी ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि मनुष्य के चरित्र का निर्माण संस्कृति के द्वारा ही सम्भव है। संस्कृति का अर्थ जो वस्तु जैसी है, उसे उससे अधिक सुन्दर उपयोगी और विशाल बनाना है। जल प्राणिमात्र के लिये परम आवश्यक है, किन्तु सभी जगह उपलब्ध जल कई बार पीने योग्य नहीं होता। उसे विभिन्न उपायों से बड़े-बड़े कल-कारखानों में शुद्ध कर पीने योग्य बनाया जाता है और तब वह मानो हमारे जीवन के लिये अमृत हो जाता है। ठीक उसी प्रकार यद्यपि राजनीति हमारे जीवन और समाज के लिए उपयोगी है, किन्तु वह उस जल के समान जिसे बगीचे में सींचा जा सकता है, भवन बनाते समय चूने, सीमेन्ट, मिट्टी आदि डालकर उससे दृढ़ भवन बनाया जाता है, किन्तु वह सदैव पीने योग्य नहीं होता। उसी जल को यदि पीना हो, तो हमें उसे विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा शुद्ध करना पड़ता है और तब वह मनुष्य के पीने के काम में आता है।

उसी प्रकार राजनीति समाज के लिये उपयोगी एवं लाभप्रद तो है, किन्तु धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में राजनीति का उपयोग करने के लिए उसका परम शुद्धिकरण आवश्यक है।

राजनीति शब्द का अर्थ है, जो नीति-विधान आदि किसी राज्य के शासन एवं संचालन में उपयोग किया जाय। राजनीति संस्कृति का एक बहुत छोटा भाग है । किसी भी देश, समाज और व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संस्कृति के द्वारा ही सम्भव होता है। संस्कृति का अर्थ किसी वस्तु को संस्कारित कर व्यक्ति, देश और समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए उपयोगी बनना है। चरित्र के निर्माण में संस्कृति का विशेष योगदान होता है। हमारी हिन्दू संस्कृति मनुष्य के सर्वांगीण विकास का उपाय बताती है, इसीलिए स्वामीजी ने हमारी संस्कृति की कुछ अशुद्धताओं, जो विदेशी सम्पर्क में आने से आ गयी थीं, उसे दूर कर शाश्वत गौरवशाली संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया तथा राजनीति में प्रत्यक्ष भाग नहीं लिया। वे यह अच्छी तरह जानते थे, कि हमारी भारतीय संस्कृति मनुष्य को सर्वांगीण विकास के योग्य बनाती है। इसलिए हमें अपनी संस्कृति के आपात दोषों को दूर कर उसे शुद्ध करना होगा, जिसका आधार धर्म और आध्यात्मिकता है, जो हमारी संस्कृति का प्राण है।

इसलिये स्वामीजी ने राजनीति की ओर ध्यान नहीं दिया, जिसका शुभ परिणाम हमारे देश की स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीय जागरण है। ○○○

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (१३)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

अब अध्यात्म के क्षेत्र में उस परम गूढ़ का क्या अर्थ है? उसे हम आगे के मन्त्र में देखेंगे –

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ।।२.४।।

जिसने आत्मतत्त्व को जान लिया, उसके द्वारा उसे वीर्य मिलता है। यहाँ पर शक्ति मिलती है, बल मिलता है। मैं आत्मतत्त्व हूँ, मेरे सामने कौन-सी बाधा है? मैं अगर पहाड़ से कहूँ, तू चूर-चूर हो जा, पहाड़ चूर-चूर हो जाएगा। ऐसी शक्ति उसमें आ जाती है। स्वामी विवेकानन्द शक्ति का पाठ पढ़ाते हैं – तुम आत्मतत्त्व हो, तुम्हारे कहने से सूरज चमकता है, तुम्हारे कहने से सूरज की गति होती है, जैसे कहा गया है – **भयादस्याग्नितपति भयात् तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृर्त्युधावति पंचमः ।।** – यह ऐसा आत्मतत्त्व है, जिसके भय से अग्नि जलती है, जिसके भय से सूर्य प्रकाशित होता है और जिसके भय से यह वायु, यह इन्द्र और यह मृत्यु अपना खेल दिखाते हैं। मैं ऐसा आत्मतत्त्व हूँ, यदि ऐसा बोध हो गया, तो कितनी शक्ति मुझे मिल जाएगी ! भगवान भाष्यकार यहाँ पर लिखते हैं – शक्ति का एक तरीका वह है, जहाँ पर हम भिन्न-भिन्न औषधि के माध्यम से जीवन में शक्ति पाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु वे कहते हैं कि वे जो शक्ति देनेवाली औषधियाँ हैं, जो दवाएँ हैं, वे तो क्षणिक शक्ति देती हैं। उसके बाद औषधि फलदायी नहीं होती है। किन्तु यह जो आत्मतत्त्व है, यह ऐसी औषधि है, ऐसी दवा है कि जो शक्ति मुझे मिल जाती है, वह कभी समाप्त नहीं होती। उस बल से मैं सदा बलवान बना रहता हूँ। उसके बाद कहते हैं, विद्यया विन्दतेऽमृतम्। ये जो विद्या है, वह मुझे अमृत बना देती है। आत्मा मुझे शक्ति प्रदान करती है और आत्मा सम्बन्धी जो विद्या है, वह मुझे अमृतत्त्व देती है।

अमृतत्त्व का क्या अर्थ है? यह पाँचवें मन्त्र में बताया गया, जिस मन्त्र की चर्चा करके आज हम अपनी वाणी को विराम देंगे।

यहाँ पर यह कहा गया कि ठीक है, प्रतिबोधविदितं मतम्, यह तो हमने जान लिया, पर इसका तात्पर्य क्या है? यह जो अमृत हो जाता है इसका क्या अर्थ है? कहते हैं –

इह चेदवेदादथ सत्यमस्ति

न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।

भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः

प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।२.५।।

आज हमलोगों ने चिन्तन किया। गुरु ने कहा – देखो शिष्य ! हर बोध में, वृति में माने मन जहाँ भी जा रहा है, उस वृति में, आत्मचैतन्य उद्भासित हो रहा है, तुमने इस प्रकार अनुभव कर उस आत्म चैतन्य को प्राप्त कर लिया। यदि मैं आत्मद्रष्टा हो जाऊँ, तो मेरे मन की वृतियाँ मुझे चैतन्यवान दिखाई देती हैं, अपनी चेतनता के कारण नहीं, बल्कि मैं देखता हूँ, मन की हर वृति के पीछे आत्मचैतन्य है। मैं उस आत्मचैतन्य का अनुभव करता हूँ और यह अनुभव करता हूँ कि मैं ही वह आत्मचैतन्य हूँ।

हर बोध में, हर वृत्ति में मुझे उस आत्मा का प्रकाश दिखाई देता है, जैसे इलेक्ट्रेसिटी है, विद्युत है। मैं देखता हूँ बल्ब है, हीटर इत्यादि है और यदि थोड़ा ध्यान से विचार करता हूँ, तो मैं बिजली को ही देखता हूँ। यह बिजली ही है, जो बल्ब को जलाती है, बिजली ही है, जो ट्यूब-लाइट को रोशनी देती है, बिजली ही है, जो पंखे को चलाती है, बिजली ही है, जो इस ध्वनि विस्तारक यन्त्र के पीछे काम कर रही है। जैसे यह उदाहरण है, वैसे ही अध्यात्म का, अनुभूति का वह उदाहरण है कि मेरे हर बोध में, हर वृत्ति में वही आत्मचैतन्य प्रकाशित है। उसी के कारण हर वृत्ति में चेतनता आती है, नहीं तो वृत्ति तो जड़ है, मन तो जड़ है। जब मैंने इस प्रकार से आत्मतत्त्व को जान लिया कि वह मेरी हर वृत्ति का प्रकाशक है, हर बोध के पीछे वही प्रकाशक के रूप में विद्यमान है, तो अमृतत्वं हि विन्दते, वह अमृतत्त्व का अधिकारी हो जाता है, वह

सिद्ध हो जाता है।

गुरुजी ऐसा बताते हैं। यह जो आत्मा है, उससे जो शक्ति मिलती है, वह कभी नष्ट नहीं होती। वत्स ! – **धन-सहायमन्त्रौषधितपोयोगकृतं वीर्यं मृत्युं न शक्नोत्यभिभवतुम् अनित्यवस्तुकृतत्वात्** – धन से, मन्त्र से, किसी की सहायता से और औषधि से जो बल मिलता है, तपोयोग के सहारे जो वीर्य मिलता है, बल मिलता है, वह मृत्यु को हराने में समर्थ नहीं है। क्योंकि ये सभी वस्तुएँ स्वयं क्षणिक हैं, इसलिए वे मृत्यु को नहीं हरा सकतीं। किन्तु **आत्मविद्याकृतं तु वीर्यमात्मनैव विन्दते न अन्येन** – जो आत्मा से वीर्य प्राप्त होता है, वह अन्य किसी वस्तु से नहीं मिलता। यह जो शक्ति का खजाना है, हमसे बाहर नहीं है, जहाँ से हमें लाना पड़े। यह हमारे भीतर है। जितनी चाहो उतनी वह अफुरंत शक्ति प्राप्त होती रहती है। इसलिए यह इसी जीवन में अनुभूतिगम्य है। इसी जीवन में इसे तुम प्राप्त करो।

अब शिष्य ने दूसरों के कल्याण के लिये, हमलोगों के कल्याण के लिये गुरुदेव से मानों जिज्ञासा की होगी, अच्छा गुरुदेव ! यह जो आत्मतत्त्व है, इतना गूढ़ है, हमारे भीतर है, इतना हमारा अपना स्वरूप है, फिर भी क्यों समझ में नहीं आता है? गुरुदेव ने कहा, इसका कारण तुम्हें बताता हूँ। एक दृष्टान्त देता हूँ, ऐसा कहकर के वे दृष्टान्त देते हैं, जिसकी चर्चा कल करेंगे। कल अन्तिम दिन है। आज यहीं पर वाणी को विराम देते हैं। हरि ॐ ततसत्।

केनोपनिषद - ४

समागत देवियो और सज्जनो। विगत तीन दिनों से केनोपनिषद पर चल रहा चिन्तन आज समाप्ति की ओर जा रहा है। शिष्य ने गुरु से पूछा कि मन जो अपने विषयों की ओर जाता है, किसकी इच्छा और प्रेरणा से जाता है और उसी प्रकार अन्य सभी इन्द्रियों के सम्बन्ध में उसने प्रश्न किया। शिष्य की जिज्ञासा प्रकारान्तर से उस चैतन्य तत्त्व के सम्बन्ध की जिज्ञासा है, जो दिखाई नहीं देता, पर जिसकी उपस्थिति से ये सारी इन्द्रियाँ कार्य करती हैं और जिसके कारण यह जड़ जगत चैतन्यवान दिखाई देता है। गुरुजी ने उसे संकेतात्मक उत्तर देते हुए कहा कि उसके लिए भीतर की ओर झाँकना पड़ेगा। शिष्य ने साधना की, चिन्तन किया और उसे लगा कि उसने उस तत्त्व को पा लिया है। उसने गुरु के पास आकर बताया। गुरुजी उसके मन के विचार को भाँप लेते हैं और कहते हैं, यदि तू ऐसा मानता है कि तूने उस तत्त्व को अच्छी तरह से जान लिया है, तो तूने उसके अत्यन्त अल्प अंश को ही जाना है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि तू फिर से विचार कर। इसके बाद साधक पुन: वापस जाकर साधना करता है, ध्यान धरता है, चिन्तन करता है। अब उसे लगने लगा कि हाँ ! शायद उसने उस तत्त्व को पा लिया। वह आकर गुरुजी से कहता है – गुरुजी ! मुझे ऐसा लगता है कि मुझे उस तत्त्व की अनुभूति हुई है। गुरुजी कहते हैं, अनुभूति किस प्रकार हुई? तो उसने बताया। कहते हैं कि जिसने ऐसा जाना कि उसने जान लिया है, तो उस तत्त्व को उसने ठीक-ठीक नहीं जाना, पर जो ऐसा मानता है कि नहीं जाना, वही जानता है। बाद में गुरुजी उसे शाबाशी देते हुए कहते हैं कि तूने ठीक ही जान लिया है और उसे समझाते हैं कि किस प्रकार ज्ञानी, समाधिवान पुरुष, आत्मसाक्षात्कारी पुरुष अपने प्रत्येक बोध में, बोध की एक-एक लहर, एक-एक उठ रही वृत्ति में, हर वृत्ति में उसका अनुभव करता है।

गुरुजी कहते हैं कि ब्रह्म ने जिताया, किन्तु देवता उसे अपनी ही जीत मानने लगे –

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ।।३.१।।

ब्रह्म ने देवताओं को जिताया। ब्रह्म की शक्ति से देवता विजयी बने। वह तो ब्रह्म की ही विजय थी, परन्तु देवता उसे अपनी महिमा मानने लगे। ऐसा सोचने लगे कि यह हमारी ही विजय है, हमारी महिमा है।

ब्रह्म ने देखा, विचार किया कि यह तो गलत बात हो गयी। ये तो देवता हैं, असुर नहीं। देवताओं में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है। इसीलिए यह देवयोनि परमात्मा को प्राप्त करने के लिए एक साधन स्वरूपा है। मानो परमात्मा देवयोनि से बहुत हटकर के नहीं है। इसलिए उस परमात्मा के मन में कृपा आयी। वह ब्रह्म प्रकट हुआ –

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति ।।३.२।।

वह ब्रह्म देवताओं के अहंकार को जान गया। उनके सामने वह ब्रह्म यक्ष का रूप धारण करके खड़ा हो गया।

(क्रमश:)

साधक-जीवन कैसा हो? (१३)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर देते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने मार्च, २०११ को रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर के आध्यात्मिक शिविर में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

कल प्रारम्भ में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की चर्चा हुई थी। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व का प्रारम्भ आत्मनिरीक्षण से करें। मेरे मित्र की चेतना में जो आघात लगा कि नहीं भाई, मैं ऐसा नहीं कर सकता। तो साधक को भी ऐसा आघात लगना चाहिए। याद़ि हमारे जीवन में आघात नहीं लगता है, तो हम दूसरों की दृष्टि में भक्तराज हो सकते हैं, दूसरों की दृष्टि में साधक हो सकते हैं, परन्तु वास्तव में हम अभी साधक नहीं बन पाये हैं। हमारे भीतर परिवर्तन नहीं आया है। हमें छोटी-छोटी बातों से जीवन में परिवर्तन लाना होगा। यह अपने आप नहीं आता है और सावधान नहीं रहने से वर्षों से दीक्षित होने पर भी ऐसा परिवर्तन नहीं आ सकता है।

कलकत्ते की घटना है। तब मैं बेलूड़ मठ में रहता था। मेरा काम रामकृष्ण मठ-मिशन की कानून और सम्पत्ति देखने का था। वकीलों से बहुत काम पड़ता था। एक हमारे वकील मित्र थे। वे अभी नहीं रहे। उन्होंने बहुत सेवा की। वे कलकत्ता में हाईकोर्ट के वकील थे। हमलोगों का सब काम ही वे करते थे। प्राय: मुझे उनके पास जाना पड़ता था। एक बार किसी मुकदमे के सम्बन्ध में उनके पास गया। गर्मी के दिन थे। वे अपने ऑफिस में बैठे थे। सम्भवत: रविवार का दिन था। कलकत्ते की गर्मी में पसीना बहुत निकलता है। घर में प्राय: लोग खुले बैठे रहते हैं। वैसे वे पतली बनियान पहनकर बैठे थे। मैं गया। उन्होंने प्रणाम किया। उनको मालूम था कि मैं आने वाला हूँ। तो देखा, उनके दोनों हाथों में २०-२५ ताबीज बँधे हुए थे और गले में भी ताबीज लटक रहे थे। रामकृष्ण मिशन के पुराने भक्त थे। रामकृष्ण मिशन से दीक्षा ली है। उनसे बातचीत हुई। हमने अपना काम उनसे कर लिया। काम करने के बाद मैंने उनसे पूछा – महाशय ! क्या बात है, आप इतनें ताबाज पहने हुए हैं? उन्होंने कहा – ये किसी काज़ी बाबा के ताबीज हैं, जो भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं। किन्तु आप तो रामकृष्ण मिशन के भक्त हैं। उन्होंने कहा – अरे महाराज, दीक्षा लेनी चाहिए, इसलिए हमने रामकृष्ण मिशन में दीक्षा ली है। ब्राह्मण थे। पहले जनेऊ के समय गायत्री दीक्षा हुई थी। हम गृहस्थ हैं। गृहस्थ को दीक्षा लेनी चाहिए, इसलिए दीक्षा ली है। प्रभु का नाम करते हैं। महाराज, आप तो संन्यासी हैं। गृहस्थी में कितनी झंझट रहती है ! उन झंझटों को काटने के लिए ये ताबीज हैं। पत्नी के झंझट से मुक्त होने के लिए एक बड़ा ताबीज, गृहस्थी अनुकूल हो और सब प्रकार की सुविधा हो, इसलिए यह ताबीज। ऐसे ही कई ताबीज सिर और छाती में लगाए हुए हैं। अब देखिए, वे भी भक्त हैं। दीक्षा लेनी चाहिए, इसलिए दीक्षा ली है। गुरुमन्त्र का जप भी करते हैं, किन्तु मन में विश्वास नहीं है। मन में यही विश्वास है कि घर-गृहस्थी के झंझटों से बचने के लिए ताबीज जरूरी है। लड़के-बच्चों को वश में रखने के लिए यह ताजुद्दीनबाबा का ताबीज काम देगा। वकील हैं, तो हमेशा मुकदमा जीतते रहें, तो जीत के लिए बाबा के ताबीज की जरूरत है। अब आप सोचिए क्या ये भक्त हैं? क्या ये साधक हैं? बाहर से तो भक्त हैं। रामकृष्ण मिशन की सूची में नाम है। वर्ष के चारों उत्सवों में आते थे, किन्तु क्या वास्तव में विश्वास है? जिस मन्त्र के जप से भवसागर पार हुआ जा सकता है, उस मन्त्र में दृढ़ श्रद्धा नहीं है, ऐसी बात नहीं है। हमारे प्रभु, हमारे इष्ट संसार की किसी भी विपत्ति से हमें बचा सकते हैं, इसमें आस्था नहीं है। इसलिए साधक को ऐसी चीजों से दूर रहकर अपने इष्ट में निष्ठावान रहना चाहिए।

आपको एक दूसरी घटना बताता हूँ। मैंने स्वयं यह बात नहीं सुनी है। उनके सेवक ने मुझे बताई थी। हमारे संघ के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी माधवानन्द जी महाराज

थे। उनको खुजली (Eczema) हो गई थी। उस समय खुजली की विशेष दवा नहीं होती थी। उन्हें बड़ा कष्ट था। एक बहुत अच्छे भक्त थे। उनको थोड़ा मन्त्र-तन्त्र का ज्ञान था। उन्होंने महाराज से कहा – महाराज, मैं यह मन्त्र जानता हूँ और इस मन्त्र के अनुष्ठान की विधि भी जानता हूँ। आपको मैं बता देता हूँ। यदि आप अनुष्ठान करेंगे और इस विधि से मन्त्र का जप करेंगे, तो आपकी खुजली ठीक हो जाएगी। पूज्यपाद माधवानन्दजी महाराज तो महापुरुष थे। उन्होंने उत्तर दिया – देखो, मुझे जो मन्त्र मिला है, माँ की कृपा से वह मन्त्र मुझे भवसागर पार करा देगा। क्या उसमें यह शक्ति नहीं है कि वह मेरी खुजली दूर कर सके? जब अच्छा होना होगा, तो ठीक हो जाएगा। मैं दूसरे किसी भी मन्त्र का अनुष्ठान नहीं करूँगा।'' यह है साधक की अपने इष्ट और इष्ट-मन्त्र के प्रति अनन्य निष्ठा।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में भोजन कर रहे हैं। एक भक्त महिला आयी हैं। वे माँ के पास आती रहती हैं। वे लोटे में पानी लेकर भोजन के बाद ठाकुर का हाथ धुला रही हैं। ठाकुर उनसे कहते हैं – मेरे सिर में दर्द है। तुम तो ऐसा मन्त्र जानती हो, जिससे मेरा दर्द ठीक हो जाएगा। जरा मेरे सिर पर हाथ फिरा देना तो? महिला अवाक् हो गयीं। उन्होंने सोचा, इस मन्त्र को मैंने सिद्ध किया, इसे मुझे छोड़कर किसी को भी मालूम नहीं है, यहाँ तक कि श्रीमाँ सारदा को भी मैंने कभी नहीं बताया है। यह बात ठाकुर कैसे जान गए? वह महिला चकित हो गईं और डर भी गयीं। ठाकुर ने कहा, तो उनके सिर पर हाथ रख दिया। वे माँ के पास गयीं। उन्होंने माँ से पूछा, माँ यह बात ठाकुर कैसे जान गए? मैंने तो तुमको और किसी को भी नहीं बताया था। माँ ने हँसकर कहा – अरे बेटी, उनके पास कुछ छिपा नहीं रहता है। वे सब जानते हैं। उस दिन के बाद से उनकी वह मन्त्र-शक्ति समाप्त हो गयी। अन्यथा उस महिला का आध्यात्मिक जीवन नष्ट हो जाता।

विश्वप्रसिद्ध होने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द जी दक्षिण भारत में भ्रमण कर रहे थे। मद्रास में अचानक उन्होंने एक दिन स्वप्न देखा कि उनकी माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। वे बड़े चिन्तित हुए। तब मोबाईल फोन का जमाना नहीं था। भारत में टेलीग्राम हुआ करता था। वे बहुत व्याकुल और दुखी हुए। भक्तों ने पूछा, तो स्वामीजी ने कहा – मैंने रात्रि में ऐसा स्वप्न देखा कि मेरी माँ बहुत बीमार है। इसलिये मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। स्वामीजी के शिष्य आलासिंगा पेरुमल थे। उन्होंने कहा कि आप चिन्ता न करें। हमारे यहाँ एक सज्जन हैं, जो भविष्यवक्ता और भविष्यद्रष्टा हैं। आप उनके पास चलिए। वे लोग स्वामीजी को लेकर उनके पास गये। स्वामीजी और आलासिंगा वहाँ बैठे रहे। काफी देर हो गयी, उसने कुछ नहीं कहा। स्वामीजी दुखी थे। उन्होंने आलसिंगा से कहा – वापस चलो, यहाँ बैठने से क्या लाभ? तभी कुछ ही देर में उस व्यक्ति ने आलासिंगा से बैठने के लिए कहा। वे लोग बैठे रहे। उस व्यक्ति को मन्त्र-सिद्धि थी। उसने आलासिंगा को स्वामीजी तथा उनके पिताजी के सम्बन्ध में सारी बातें बतायीं। कहा कि आपकी माँ और आपके घर के सभी लोग स्वस्थ हैं। किसी को कोई कष्ट नहीं है। आपके गुरु एक महान गुरु हैं। आप पर उनकी अपार कृपा है। आप एक दिन विश्वप्रसिद्ध होंगे। उसने बहुत-सी बातें बतायीं, जो सभी भविष्य में अक्षरश: सत्य हुईं। स्वामीजी जब विदेश से लौटकर आये, तब दक्षिण भारत में कहीं व्याख्यान देने खड़े हुए थे। तब वे विश्वप्रसिद्ध हो गये थे। हजारों लोग उनका व्याख्यान सुनने आते थे। एक व्याख्यान के श्रोताओं में वह व्यक्ति भी था। स्वामीजी ने उसे देखा तथा आगे बढ़कर उसका आलिंगन किया और उससे कहा – अब तुम्हारी यह सारी मन्त्र-शक्ति समाप्त हो गयी। अब भगवान का भजन करो। बाद में वह व्यक्ति बहुत बड़ा भक्त हुआ।

यह कैसे ज्ञात होता है? यह तभी होता है, जब हमने आत्मनिरीक्षण का अभ्यास किया हो। हमारा दृष्टिकोण बदल रहा है या नहीं इसे हमें स्वयं ही देखना पड़ेगा। मैंने दीक्षा लेकर भक्तों में नाम लिखा लिया। सब जगह भक्तराज छपवाकर दुकानदारी करने लगे। भक्तराज क्या काम करते हैं? भक्तराज गिरवी रखने का काम करते हैं। आप लोगों के जेवर-गहनें, घर आदि गिरवी रखकर पैसे देते हैं। बैंक तो १०-१२% ब्याज लेता है, किन्तु भक्तराज २५ % ब्याज लेते हैं। ब्याज पहले ही काट लेते हैं और दुकान का नाम रखा है, भक्तराज की दुकान। क्या ऐसे व्यवहार से हमारे हृदय में भक्ति आएगी? भक्त का जीवन कैसे होना चाहिए? श्रीरामकृष्ण देव ने कहा, 'मन मुख एक होबे' – मन और मुख एक होना चाहिए।

(क्रमश:)

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिग्टंन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है । 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है । – सं.)

भ्रातृत्व-प्रेम

रामकृष्ण आश्रम भुवनेश्वर, उड़ीसा में बहुत वर्ष पहले यह घटना घटी थी । रामकृष्ण संघ के संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज भुवनेश्वर आश्रम में रहते थे । एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने अपने शिष्य स्वामी गंगेशानन्द को गंगा जल लाने के लिए कहा ।

स्वामी गंगेशानन्द एक छोटी शीशी में गंगा-जल लेकर आये । स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने उस शीशी में से कुछ जल लेकर अपने शरीर पर छिड़का । शीशी को एक किनारे रखकर उन्होंने अपने सेवक (स्वामी निर्वेदानन्द) को पुकारा । सेवक के आने पर उन्होंने अलमारी में रखी पुस्तकों में से एक पुस्तक की ओर संकेत कर उसे लाने के लिए कहा । स्वामी ब्रह्मानन्द जी उस पुस्तक को पढ़ने के लिये एक कुर्सी पर बैठ गये । लेकिन उन्होंने पुस्तक खोली तक नहीं । बल्कि उन्होंने कुछ देर पुस्तक देखी, मानो ध्यान कर रहे हों और अपनी आँखें बन्द कर लीं । इसके बाद उन्होंने स्वामी निर्वेदानन्द को पुस्तक वापस कर अलमारी में उसी स्थान पर रखने को कहा । तत्पश्चात स्वामी ब्रह्मानन्द जी कमरे से बाहर चले गये ।

स्वामी गंगेशानन्द जी थोड़ी दूर से इस सम्पूर्ण घटना को देख रहे थे । उन्हें यह जानने की उत्सुकता हुई कि पुस्तक स्पर्श करने के पूर्व क्यों स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज ने स्वयं को गंगा-जल से पवित्र होना आवश्यक समझा? यह कौन-सी पवित्र पुस्तक है, जिसके लिए ऐसी पवित्रता की आवश्यकता है? अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए स्वामी गंगेशानन्द ने अलमारी से पुस्तक निकालकर देखी । वे देखकर आश्चर्यचकित हो गये कि वह कोई आध्यात्मिक पुस्तक नहीं थी, वह तो केवल Emerson's Essays 'इमरसन के निबन्ध' की प्रति थी ।

स्वामी गंगेशानन्द पहले यह नहीं समझ सके कि स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज इस पुस्तक को इतना पवित्र क्यों मानते हैं? लेकिन जब उन्होंने पुस्तक खोलकर देखी, तो उसके प्रथम पृष्ठ पर स्वामी विवेकानन्द जी के हस्ताक्षर थे, जिससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने यह पुस्तक स्वामी ब्रह्मानन्द को सप्रेम उपहार में दी थी । स्वामी गंगेशानन्द को अब बात समझ में आयी कि स्वामी विवेकानन्द जी द्वारा उपहार में दी गई होने के कारण ही यह पुस्तक स्वामी ब्रह्मानन्द जी के लिए इतनी पवित्र थी । श्रीरामकृष्ण के अनुसार स्वामी विवेकानन्द नित्यमुक्त थे और उनके सभी शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ भी थे । श्रीरामकृष्ण उनको प्राचीन ऋषि नर के अवतार के साथ-साथ भगवान नारायण का भी अवतार मानते थे ।

इस घटना से यह ज्ञात होता है कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी, जो स्वयं ही उच्च कोटि के सन्त थे, उन्हें अपने गुरुभाई स्वामी विवेकानन्द जी पर कितनी अगाध श्रद्धा थी । स्वामी विवेकानन्द की स्मृति से जुड़ी पुस्तक मात्र से स्वामी ब्रह्मानन्द जी का आध्यात्मिक भाव जाग उठा । लगभग १९७० ई. में बेलूड़ मठ में रहते समय मैंने यह घटना स्वामी गंगेशानन्द जी महाराज से सुनी थी ।

ईश्वर-साक्षात्कारी पुरुषों के लिए संसार भगवान की लीला है

स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी प्रबुद्ध महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे । वे एक बार शिलाँग आश्रम में घूमने के लिए आये । यह जानकर कि वे श्रीरामकृष्ण देव के कुछ महान शिष्यों का सान्निध्य प्राप्त कर चुके हैं, हम लोगों ने उनसे उनके बारे में कहने के लिए अनुरोध किया । उसके बाद प्रबुद्ध महाराज ने स्वामी ब्रह्मानन्दजी की यह घटना सुनाई –

''स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की घटना सुनाता हूँ । मैं पहली बार बेलूड़ मठ गया था । उस दिन स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज का दर्शन करने गया । किसी ने मुझे बताया कि महाराज पुराने भवन (वर्तमान में स्वामी विवेकानन्दजी का शयन-कक्ष) के पूर्वी बरामदे में टहल रहे हैं । जब मैं वहाँ गया, तो उन्हें बहुत गम्भीर भाव में देखा । उन्हें प्रणाम करने का साहस नहीं हुआ । मैं उनसे कुछ दूर बरामदे में फर्श पर बैठ गया । कुछ अन्य भक्त लोग भी वहाँ बैठे हुए थे । सुबह का समय था । तभी एक संन्यासी ने आकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज को प्रणाम कर कहा, ''महाराज, आज मैं एक मुकदमे के सम्बन्ध में कचहरी जा रहा हूँ ।' यह सुनने के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी का भाव बदल गया । उन्होंने संन्यासी से प्रसन्नतापूर्वक कहा, ''आगे बढ़ो । अपनी पूरी शक्ति से विपक्षी पक्ष से लड़ो । वे लोग कैसे विजयी हो सकते हैं? हम लोग संन्यासी हैं, हमलोगों के पास समय का अभाव नहीं है । इसे जीतने में कितना समय लगेगा, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, हम लोग लड़ते रहेंगे ।' बाद में मुझे ज्ञात हुआ

कि यह मुकदमा एक दुष्ट पड़ोसी द्वारा अवैध ढंग से बेलूड़ मठ की सम्पत्ति को अतिक्रमण करने के कारण चल रहा था।

"मैंने सुना था कि ईश्वर-साक्षात्कारी पुरुषों के लिये यह संसार मानो ईश्वर की लीला है। वे अपने चारों ओर इस प्रकार की लीला को देखकर बहुत आनन्दित होते हैं। वे सर्वत्र चैतन्यमय देखते हैं। उस लीला में न कुछ अच्छा है और न कुछ बुरा। क्योंकि ईश्वर अच्छे-बुरे दोनों से परे हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द जी जैसे अध्यात्मभावापन्न पुरुष इस दिव्य-लीला को देखकर आनन्दित होते हैं और पूरे मन से इसमें भाग लेते हैं। उनकी दृष्टि में मठ का मुकदमा ईश्वर के द्वारा खेली गयी दिव्य-लीला थी, अन्य कुछ भी नहीं। इसीलिये उन्होंने संन्यासी को न्यायालय में मुकदमा लड़ने के लिए उत्साहित किया।"

स्वामी ब्रह्मानन्द

ब्रह्मज्ञानी को कौन समझ सकता है?

श्रीरामकृष्ण के एक महान संन्यासी-शिष्य स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज थे। उनके बारे में स्वामी ब्रह्मानन्दजी के शिष्य स्वामी देवानन्द ने मुझे यह घटना बतायी थी।

इस घटना के समय स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी में निवास कर रहे थे। यह घटना उनके अमेरिका से आने के बाद की है। स्वामी देवानन्द (१८९७-१९९२) तब वाराणसी सेवाश्रम में रहते थे। वाराणसी में रहने के कारण वे स्वयं को भाग्यशाली समझते थे, क्योंकि इससे उन्हें स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिलता था। वे प्रतिदिन स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज के कक्ष में जाकर उन्हें प्रणाम करते एवं वहाँ कुछ देर बैठकर स्वामी तुरीयानन्दजी के अन्य संन्यासियों के साथ वार्तालाप को सुनते थे। प्रत्येक बार जब वे स्वामी तुरीयानन्द जी के कक्ष में जाकर उन्हें प्रणाम करते, तो स्वामी तुरीयानन्द जी मुस्कुराते हुये उनका कुशल-समाचार पूछते थे, स्वामी देवानन्द जी इससे बहुत आनन्दित होते।

स्वामी तुरीयानन्दजी का स्वास्थ्य उस समय अच्छा नहीं था। उनके लिए अलग से विशेष पथ्य बनाना पड़ता था। उनके एक सेवक-महाराज उनके भोजन की व्यवस्था देखते थे और आवश्यक पथ्य बनाते थे। एक दिन सेवक महाराज ने स्वामी देवानन्द को तुरीयानन्दजी महाराज के लिए भोजन बनाने में सहायता करने के लिए कहा। तुरीयानन्द महाराज जी की सेवा का अवसर पाकर स्वामी देवानन्द आनन्द-विभोर हो गये। जब वे सेवक महाराज की सहायता करने के लिए छोटे से रसोई-घर में गये, तो सेवक महाराज ने ओखली-मूसल और कुछ मसालों का नाम लेकर देवानन्द से कहा, "उन सभी मसालों को अलग-अलग पीस कर मुझे दो।"

स्वामी देवानन्द जीवनभर किसी रसोई-कार्य से रसोईघर में नहीं गये थे। उनके घर भोजन हमेशा रसोइया बनाता था। भारतीय समाज के उच्च मध्यम परिवार के व्यक्ति होने के कारण उन्होंने भोजन बनाना नहीं सीखा था। वे राशन का सामान खरीदने के लिए कभी दुकान पर भी नहीं गये थे। यह कार्य उनके घर में नौकर ही करता था।

स्वामी देवानन्द ने भारतीय भोजन में उपयोग होनेवाले विभिन्न प्रकार के मसालों को उनके मूल रूप में, अर्थात् पीसने के पहले के रूप में कभी नहीं देखा था। इसलिये सेवक-महाराज ने जिन मसालों को बताया था, स्वामी देवानन्द उसे नहीं पहचान सके। अत: उन्होंने सेवक महाराज से कहा, "महाराज, मुझे यह बताइए कि कौन-सा मसाला कैसा दिखता है, तब मैं उसे पीस कर दे देता हूँ।"

सेवक-महाराज यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने सोचा कि सहायता नहीं करनी है, इसलिए स्वामी देवानन्द ऐसा बहाना बना रहे हैं। जब स्वामी देवानन्द ने कहा कि वे विभिन्न प्रकार के मसालों को नहीं पहचानते हैं, तो सेवक महाराज को विश्वास ही नहीं हुआ। सेवक-महाराज को इसके लिए दोषी भी नहीं माना जा सकता। क्योंकि जो व्यक्ति भारत में पला-बढ़ा हो, वह दैनन्दिन उपयोग में आने वाले मसालों को नहीं जानता, ऐसा शायद ही देखने को मिलता है। इसलिये सेवक-महाराज ने दुखपूर्वक देवानन्द से कहा, "चले जाओ, मुझे तुम्हारी सहायता नहीं चाहिए!"

प्रतिदिन की भाँति अगले दिन स्वामी देवानन्द ने स्वामी तुरीयानन्द जी के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। लेकिन स्वामी तुरीयानन्दजी ने अपना मुख दूसरी ओर घुमा लिया। उन्होंने स्वामी देवानन्द की ओर देखा तक नहीं और न ही उनसे बात की। इसी प्रकार तीन-चार दिनों तक चलता रहा। स्वामी देवानन्द बहुत ही दुखी थे। उन्हें समझ में आ गया

कि उनके और सेवक-महाराज के बीच मसाला तैयार करने के विषय के सम्बन्ध में ही कदाचित् स्वामी तुरीयानन्द जी उनके साथ ऐसा उपेक्षापूर्ण व्यवहार कर रहे हैं। सेवक-महाराज ने अवश्य ही उनसे शिकायत की होगी।

उन्होंने स्वामी तुरीयानन्द जी के पास जाकर रोते हुए कहा, "महाराज, आप ब्रह्मज्ञ पुरुष हैं, अवश्य ही आपको सब कुछ ज्ञात है। आप जानते हैं कि मैंने जो कुछ सेवक महाराज से कहा है, वह सत्य है। वास्तव में, मैं विभिन्न प्रकार के मसालों को नहीं पहचान सकता।"

स्वामी तुरीयानन्द

स्वामी तुरीयानन्दजी ने उनसे कहा, "यदि तुम मसालों को नहीं पहचान सकते, तो ईश्वर को कैसे पहचान सकोगे? तुमसे किसने कहा कि मैं ब्रह्मज्ञ पुरुष हूँ।"

स्वामी तुरीयानन्द जी की इस का बात क्या तात्पर्य है, जब वे कहते हैं, "तुमसे किसने कहा कि मैं ब्रह्मज्ञ पुरुष हूँ?" क्या वे ब्रह्मज्ञ पुरुष होने से अस्वीकार कर रहे थे? या उनके कथन का अर्थ था कि एक ब्रह्मज्ञ पुरुष को ही उनको ब्रह्मज्ञ पुरुष घोषित करने का अधिकार है, स्वामी देवानन्द को नहीं, जिन्हें अब तक ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है? दूसरा कारण ही सत्य है, ऐसा मुझे विश्वास है।

वर्षों पहले जब स्वामी विवेकानन्दजी ने प्रथम बार अमेरिकन भक्तों से स्वामी तुरीयानन्दजी का परिचय दिया था, तो उन्होंने कहा था, "मेरे भीतर तुम लोगों ने क्षत्रिय-शक्ति का ही विकास देखा है। मैं तुम्हारे बीच अपने एक ऐसे गुरुभाई को भेजूँगा, जो ब्राह्मण-सुलभ सद्गुणों के मूर्त विग्रह हैं। वे एक आदर्श ब्राह्मण हैं, ब्रह्मवेत्ता हैं। मानव-जीवन में उच्चतम आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति कैसे होती है, यह उन्हें देखकर समझ सकोगे।" स्वामी तुरीयानन्दजी या अन्य किसी सन्त की आध्यात्मिकता को पहचानने के लिये स्वामी विवेकानन्द जी से बड़ा दूसरा कौन हो सकता है? **(क्रमशः)**

भगिनी निवेदिता

स्वामी तन्निष्ठानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

(२०१६ में भगिनी निवेदिता की १५०वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठको के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

१९०२ ई. में दशहरे के समय स्वामी विवेकानन्द की शिष्या और मानसकन्या भगिनी निवेदिता और स्वामी सदानन्द का नागपुर में आगमन हुआ था। वहाँ निवेदिता का बड़ा सुन्दर व्याख्यान हुआ। उनके व्याख्यान में बहुत भीड़ होती थी। नागपुर के मॉरिस कॉलेज के क्रिकेट टीम के विजयी छात्रों का पुरस्कार-वितरण निवेदिता के कर-कमलों से दशहरे के एक दिन पूर्व सुबह सिटी हाईस्कूल के हॉल में सम्पन्न हुआ।

मॉरिस कॉलेज ने भगिनी निवेदिता ने वहाँ के छात्रों को भारतीय खेलों के बारे में गर्व करने के लिए कहा था। दशहरे के दिन भारत में शस्त्र-पूजा की परम्परा के बार में तथा दुर्गा पूजा के महत्त्व के बारे में भी कहा।

निवेदिता के व्याख्यान को आयोजकों, शिक्षकों और छात्रों ने शान्ति से सुना। उनकी बातें सबके हृदय को स्पर्श कर गई। उन्होंने कहा कि कल कुश्ती, तलवारबाजी जैसे कुछ खेल देखने की उनकी इच्छा है।

निवेदिता के ओजस्वी देशाभक्तिमय भाषण को सुनकर सब लोग सन्तुष्ट होकर वापस चले गए, केवल भौतिक एवं रसायनशास्त्र के प्राध्यापक मुखर्जी कुछ गिने-चुने छात्र वहाँ रुके रहे। भगिनी निवेदिता इस शहर से निराश होकर न जाएँ, इसलिए प्रो. मुखर्जी चिन्तित थे। निवेदिता के चले जाने के बाद कॉलेज में तलवार और कुश्ती कौन-कौन खेल सकता है, इस बात की खोज आरम्भ हुई। कुछ छात्र इसके लिए तैयार हुए। उन्होंने सोच लिया कि कुछ भी हो जाए, इस कार्यक्रम को करना ही है। मॉरिस कॉलेज (वर्तमान का सिटी कॉलेज) के छात्रावास के मैदान में यह कार्यक्रम हुआ। निवेदिता, शिक्षक एवं छात्र इसे बरामदे में बैठकर देख रहे थे। छात्रों ने कुश्ती, लाठी तथा शस्त्रों का प्रदर्शन किया। कार्यक्रम तीन घण्टों तक चलता रहा। उन दिनों इन खेलों को निम्न श्रेणी का समझा जाता था।

अन्त में भगिनी निवेदिता ने कहा, "आजकल हम लोगों का मात्र उच्च बौद्धिक-शिक्षा में झुकाव अधिक है। महाविद्यालयों से प्रतिवर्ष अनेक छात्र डिग्री लेते हैं, किन्तु उनका शरीर दुर्बल रहता है। आज हमें क्रान्तिकारी स्वदेशाभिमानी नवयुवकों की आवश्यकता है।" इस तरह भगिनी निवेदिता ने स्वामी विवेकानन्द के जीवन और सन्देश द्वारा छात्रों को प्रोत्साहित किया। ○○○

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

कः खलु नालंक्रियते दृष्टादृष्टार्थसाधनपटीयान् ।
अमुया कण्ठस्थितया प्रश्नोत्तररत्नमालिकया ।।१।।

इहलोक और परलोक के भोग्य-विषय साधनों को भलीभाँति जानने वाला ऐसा कौन मनुष्य है, जो कण्ठ में धारण करने वाली इस प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका से शोभा नहीं पाता? (अर्थात, लोक में जिस प्रकार रत्नमाला को पहनकर लोग सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार इस प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका को भी अपने कण्ठ में धारण कर लोग सुशोभित होते हैं।)

भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम् ।
को गुरुरधिगततत्त्वः शिष्यहितायोद्यतः सततम् ।।२।।

प्र. हे भगवन् ! ग्रहण करने योग्य क्या है?

उ. गुरु का वचन।

प्र. त्याग करने योग्य क्या है?

उ. बुरे कर्म।

प्र. गुरु कौन है?

उ. जिसने परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है और जो शिष्य के कल्याण के लिए सतत प्रयत्यनशील है, वही गुरु है।

त्वरितं कि कर्तव्यं विदुषां संसारसंततिच्छेदः ।
किं मोक्षतरोर्बीजं सम्यक्ज्ञानं क्रियासिद्धम् ।।३।।

प्र. विद्वानों को शीघ्र क्या करना चाहिए?

उ. जन्म-मरणरूपी संसार का उच्छेद।

प्र. मोक्षरूपी वृक्ष का बीज क्या है?

उ. यथार्थ ज्ञान और उसकी कार्य में परिणति।

कः पथ्यतरो धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम् ।
कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरणा गुरुषु ।।४।।

प्र. सबसे हितकर क्या है?

उ. सनातनधर्म।

प्र. इस लोक में पवित्र कौन है?

उ. जिसका मन शुद्ध है।

प्र. पण्डित कौन है?

जो सत् और असत् का विवेक करता है।

प्र. विष क्या है?

उ. गुरुजनों की अवहेलना।

किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव ।
किं मनुजेष्विष्टतमं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ।।५।।

प्र. संसार में सार वस्तु क्या है?

उ. संसार का निरन्तर विवेकपूर्वक चिन्तन ही सार वस्तु है।

प्र. मनुष्यों के लिए सबसे अभीष्ट क्या है?

उ. अपने एवं दूसरों के हित के लिए प्रयत्नशील जीवन।

मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहः के च दस्यवो विषयाः ।
का भववल्ली तृष्णा को वैरी यस्त्वनुद्योगः ।।६।।

प्र. मदिरा की तरह विमूढ करने वाला कौन है?

उ. शरीरादि भोग्य वस्तुओं में स्नेह।

प्र. संसार में डाकू कौन है?

उ. (मन को अधोगामी करने वाले) शब्दादि पाँच विषय।

प्र. संसाररूपी बेल कौन सी है?

उ. तृष्णा ही संसार की बेल है।

प्र. शत्रु कौन है?

उ. अकर्मण्यता ही शत्रु है।

कस्माद्भयमिह मरणादन्धादिह को विशिष्यते रागी ।
कः शूरो यो ललनालोचनबाणैर्न व्यथितः ।।७।।

प्र. इस संसार में भय किससे है?

उ. मृत्यु से।

प्र. अन्धे से भी अधिक (अन्धा) कौन है?

उ. विषयों में फँसा हुआ रागी।

प्र. शूरवीर कौन है?

उ. जो ललनाओं के कटाक्ष रूपी बाणों से व्यथित नहीं हुआ।

पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिह युज्यते सदुपदेशः ।
किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम ।।८।।

प्र. संसार में कर्णरूपी अंजलि से पीने योग्य अमृत क्या है?

उ. सत्-उपदेश।

प्र. बड़प्पन का मूल क्या है?

उ. किसी वस्तु विशेष की किसी से प्रार्थना न करना, यह बड़प्पन का मूल है।

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८८. हरि भगति अति सुखदायक

विनोबा भावे की उम्र तब ८ वर्ष की थी। एक दिन रात को उनकी माँ दही जमाते समय धीरे-धीरे कोई अभंग गा रही थी कि बालक विनोबा ने पूछा, 'माँ, क्या दही जमाते समय भी भगवान का नाम लेना चाहिए? ''हाँ, बेटे'' माँ ने कहा, ''दही जमाते समय ही नहीं, कोई भी काम करते समय हमें भगवान का स्मरण करना चाहिये। इससे हमारा काम कब खत्म हुआ पता ही नहीं चलता। ''इसी समय पिताजी वहाँ आए और उन्होंने पत्नी से कहा, ''कल तुम्हें भगवान को एक लाख अक्षत (अखंड चावल के दाने) अर्पित करने हैं। माँ द्वारा जरूर करूँगी कहने पर विनोबा ने पूछा, 'माँ, तुम्हें तो गिनती आती नहीं, फिर एक लाख अक्षत कैसे गिनोगी?'' माँ बोली, ''बेटे, इसमें महत्त्व गिनती का नहीं, भाव का है। यदि श्रद्धाभाव से हम दस अक्षत भी भगवान को अर्पित करेंगे, तो वे एक लाख के बराबर होंगे। एक संत के वचन हैं – ''संख्या नहीं शक्ति जीतती है, बुद्धि नहीं भावना जोड़ती है।'' एक बड़े बर्तन की ओर इशारा करते हुए उन्होंने बालक से कहा, ''तुम्हारे पिताजी का कहना है कि इस बर्तन को चावल से भरने पर हाथ की जितनी उंगलियाँ है, उतनी बार अर्पित करने पर एक लाख जितने अक्षत हो जायेंगे। भगवान को फूल, अक्षत आदि अर्पित करने समय श्रद्धा-भक्ति होना जरूरी है। भगवान अपने हैं, यह भाव मन में आना ही भक्ति है। भगवान हमारे हृदय में विराजमान हैं, यह विश्वास हमें अपने मन में पैदा करना चाहिये। भगवान करुणानिधि हैं, दया के निधान हैं, सर्वहितैषी हैं, यह भाव मन में आना उनके प्रति हमारी आस्था का द्योतक है। किन्तु उनकी उपासना या पूजा करते समय किसी बात की इच्छा नहीं करनी चाहिए।'' माँ के ये शब्द बालक विनोबा के हृदय में पैठ गए। इसी का परिणाम यह हुआ कि लोगों ने उन्हें 'संत' की उपाधि देकर उन्हें गौरवान्वित किया।

सच्चे हृदय से किये जाने वाले जप-तप, ध्यान, भजन, स्तोत्र, पठन-पूजन, अर्चन सब भगवान की ओर ले जाने के सुलभ मार्ग हैं। इन्हें आस्थापूर्वक अपने जीवन में स्थान देने पर हमें सद्गति मिलेगी।

२८९. तनिक मान मन में नहीं सबसों सरल सुभाव

लाल बहादुर शास्त्री तब संयुक्त प्रांत (उ.प्र.) के राज्यमंत्री थे। एक गांव में उनकी सभा का आयोजन किया गया। गाँव में एक छोटा स्टेशन था। शास्त्री जी तीसरी श्रेणी का टिकट कटवाकर डिब्बे में बैठे। गाड़ी जब प्लेटफार्म पर रुकी, तो उनकी अगवानी के लिए आए लोगों में अफरातफरी मच गई। हाथ में हार लिये वे लोग पहली श्रेणी के डिब्बे के सामने जा खड़े हुए। इधर शास्त्रीजी जब गेट से बाहर जाने लगे, तो वहाँ खड़े सिपाही ने उन्हें रोककर एक जगह खड़ा होने के लिए कहा। डिब्बे के अंदर भी जब शास्त्री जी दिखाई नहीं दिये, तो लोग मायूस हो वापस जाने के लिये गेट पर आए तो उन्हें शास्त्रीजी एक ओर चुपचाप खड़े दिखाई दिये। उनके पास जाकर लोगों ने पुष्पहार पहनाये और उन्हें अभिवादन किया। सिपाही को जब पता चला कि उसने मंत्री जी को ही रोक रखा था, तो बेचारा घबड़ा गया और शास्त्री जी के चरणों पर गिरकर उसने माफी माँगी। शास्त्री जी ने उसे हाथ उठाते हुए कहा, 'इसमें माफी काहे की, तुमने तो आदेश का पालन किया।

सभास्थल पर पहुँचकर शास्त्रीजी ने उस सिपाही की ओर इशारा करते हुए पुलिस अधिकारी से कहा, 'मेरा सही स्वागत इस कर्मनिष्ठ सिपाही ने किया है। आप उसके सेवा-काल, आचरण व्यवहार और नियमों के आधार पर उसे तरक्की दे सकें, तो मुझे बड़ी खुशी होगी। इससे दूसरे कर्मचारियों को प्रोत्साहन मिलेगा और ईमानदारी से काम करने की प्रेरणा मिलेगी।'

सरल स्वभाव वाले व्यक्ति सबके साथ उदारता का व्यवहार करते हैं। सादगी, सत्यनिष्ठा और निरभिमानता ने शास्त्री जी को प्रधानमंत्री के पद तक पहुँचाया।

इस जीवन में जो सर्वदा निराश रहते हैं, उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। वे जन्म-जन्मान्तर में 'हाय, हाय' करते हुए आते हैं और चले जाते हैं। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' – वीर लोग ही वसुन्धरा का भोग करते हैं – यह वचन नितान्त सत्य है। वीर बनो, सर्वदा कहो, 'अभीः – मैं निर्भय हूँ। सबको सुनाओ – 'माभैः' – भय मत करो। भय ही मृत्यु है। – स्वामी विवेकानन्द

भारत की ऋषि परम्परा

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

श्रीसनकादि कुमार

सनक, सनातन, सनन्दन, और सनत्कुमार – सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की चार प्रथम सन्तान थीं। जब ब्रह्माजी पूर्व सृष्टि-कल्प का चिन्तन कर रहे थे और पुन: नई सृष्टि के बारे में सोच रहे थे, तब उनके मन से ये चार कुमार (नित्य ब्रह्मचारी) उत्पन्न हुए। इसलिए ये ब्रह्माजी के मानसपुत्र कहलाते हैं। ब्रह्माजी के समान ये चारों कुमार भी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान थे। उनका मन नितान्त पवित्र था। दिखने में पाँच वर्ष के शिशु की तरह वे सरल और पवित्र थे, किन्तु उन्हें वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान था। वे सदैव भगवद्भाव में निमग्न रहते थे।

उनका मन बहुत ही पवित्र था, इसलिए निद्रा, आलस्य, भूख-प्यास, सर्दी-गरमी, मिथ्या-बोध इत्यादि अविद्या-जनित कार्य का उन पर कोई प्रभाव नहीं था। उनका मन इस द्वन्द्वात्मक जगत से परे था, इसलिए उनमें किसी भी प्रकार के सृष्टि-विस्तार की इच्छा नहीं थी। अत: उनके पिता ब्रह्माजी ने जब उन्हें सन्तानोत्पत्ति द्वारा सृष्टि-विस्तार करने के लिए कहा, तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और ध्यान में बैठ गए। ऐसा कहा जाता है कि त्याग अर्थात् निवृत्ति मार्ग के प्रवर्तन हेतु साक्षात् भगवान ही इन निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता कुमारों के रूप में आए थे।

सर्वोच्च ज्ञान से सम्पन्न, सनक, सनातन, सनन्दन, और सनत्कुमार सदैव शान्त, स्थिरचित्त और सभी जीवों के एकात्म-ज्ञान में प्रतिष्ठित थे। उनके अन्तस्तल से उद्भूत भगवन्नाम उनके प्रत्येक श्वास-प्रश्वास को झंकृत करता था। उनकी वागिन्द्रिय नित्य हरि-शरणम् मन्त्र का उच्चारण करती थी। हृदय में वे श्रीहरि के सर्वमंगलमय स्वरूप के ध्यान में डूबे रहते थे। उनकी बुद्धि उस सर्वव्याप्त अखण्ड सत्ता के मूलतत्त्व में नित्य प्रतिष्ठित थी। उनके कर्ण भगवान और उनकी लीलाओं का ही श्रवण करते थे। वे श्रीहरि की सर्वोत्कृष्ट महिमा का मुहुर्मुहु गान करते रहते थे।

सर्वग्राही काल (मृत्यु) को भी उनके सम्मुख आने का साहस नहीं था। आत्मा में प्रतिष्ठित उनका मन क्षण भर के लिए भी विषयोन्मुख नहीं होता था। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि ये पवित्र, स्वतन्त्र, दिगम्बर, ईश्वरपरायण कुमार – बालऋषि स्वच्छन्द विचरते थे। सनक, सनातन, सनन्दन, और सनत्कुमार परिव्राजक के रूप में विश्व-ब्रह्माण्ड की गहराई जहाँ शेषनाग रहते हैं, से लेकर कैलाश पर्वत जहाँ भगवान शिव नित्य ध्यान-मग्न रहते हैं, विचरण करते थे। उनकी बाल सुलभ क्रीड़ाएँ और प्रेम भरे शब्द इन देवताओं को भी श्रीभगवान की लीलाओं का गान करने को प्रेरित करती थीं। अनेक अवसरों पर ये कुमार परामर्शक और निर्णायक की भूमिका भी निभाते थे।

एक बार वे श्रीहरि के श्रीधाम वैकुण्ठ गए। वहाँ जय और विजय नामक दो द्वारपालों ने उन्हें बालक समझकर रोका और उनका उपहास किया। श्रीहरि के दर्शन में बाधा डालने वाले द्वारपालों की धृष्टता पर उनका क्रोध आना स्वाभाविक ही था। उन्होंने द्वारपालों को शाप दिया कि उन लोगों ने राक्षसों की तरह व्यवहार किया है, इसलिए उन्हें तीन बार राक्षस योनि में जन्म लेना पड़ेगा।

उसी क्षण श्रीभगवान द्वार पर आए और चारों कुमारों को दर्शन देकर कृतार्थ किया। उनका मन भी तुरन्त शान्त हो गया। उन्हें पश्चाताप हुआ कि वे क्रोध पर अपना संयम न रख सके, किन्तु श्रीभगवान ने उन्हें सान्त्वना दी कि उनकी ही प्रेरणा से यह सब कुछ हुआ है। इन कुमारों के क्रोध को निमित्त बनाकर एक महान प्रयोजन को सिद्ध करना था।

द्वारपाल भय और आशंका से काँप रहे थे। एक तो श्रीभगवान से बिछड़ने का दुख और उसके ऊपर राक्षस योनि में जन्म ! उन्होंने चारों कुमारों से क्षमादान की प्रार्थना की। शाप को तो टाला नहीं जा सकता था, इसलिए ऋषिकुमारों ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि प्रत्येक जन्म में उनकी मृत्यु श्रीभगवान के हाथों होगी।

शाप के फलस्वरूप जय और विजय का जन्म हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप में हुआ। श्रीभगवान ने नृसिंह अवतार में उनका वध किया। जय और विजय द्वितीय बार रावण और कुम्भकर्ण के रूप में उत्पन्न हुए, तब भगवान श्रीराम द्वारा उनका वध हुआ। तीसरी बार शिशुपाल और

दन्तवक्त्र के रूप में उनका वध भगवान श्रीकृष्ण द्वारा हुआ। अत: चारों कुमारों के शाप के फलस्वरूप ही भगवान ने तीन बार पृथ्वी पर अवतार लिया।

एक बार सनकादि कुमार महाराजा पृथु से मिलने गए। महाराजा पृथु अत्यन्त विद्वान और कुशल शासक थे। राजा ने उनकी यथोचित अभ्यर्थना करने के बाद विनम्रतापूर्वक पूछा, 'पूज्य मुनीश्वरो, मनुष्य जीवन का सर्वोच्च कल्याण कैसे हो सकता है?'

सनत्कुमारजी ने कहा, 'प्रथम, परमात्मा से अभिन्न अपने आत्म-स्वरूप में अनुराग अथवा ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होना चाहिए। द्वितीय, संसार की किसी भी अनित्य वस्तु के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिए। अहंकार ही अज्ञान का कारण है। अहंकार का निग्रह हो जाने से आत्मा अपने दिव्य स्वरूप में भासती है। तब सुख-दुख आदि यह द्वन्द्वात्मक जगत स्वप्न की भाँति अदृश्य हो जाता है। केवल एक अखण्डानन्द सत्ता रह जाती है, जो ब्रह्म से अभिन्न है।

अतिप्राचीन काल से यह ज्ञान-विचार भारतीय आध्यात्मिक परम्परा का मूलतत्त्व रहा है।

एक बार धृतराष्ट्र ने सनकादि ऋषिकुमारों से मृत्यु के रहस्य के बारे में पूछा। सनत्कुमारजी ने कहा, 'प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि' – प्रमाद ही मृत्यु है। श्रीशंकराचार्य को यह संवाद इतना विलक्षण लगा कि उन्होंने इस पर भाष्य लिखा, जो 'सनत्सुजातीय संवाद' से जाना जाता है।

देवर्षि नारद सर्व-विद्याओं में पारंगत थे, किन्तु उनके मन में परम शान्ति नहीं थी। उस परमानन्द के रहस्य को जानने के लिए वे सनकादि कुमारों के पास गए। सनत्कुमारजी ने देवर्षि नारद को उपदेश दिया कि आत्मज्ञान के अतिरिक्त अन्य सभी ज्ञान सीमित और अपूर्ण हैं। तत्पश्चात् उन्होंने नारदजी को 'भूमा-विद्या' का उपदेश दिया। यह अद्वैत वेदान्त के सर्वोत्कृष्ट उपदेश में से एक है, जिसका वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् के प्रसिद्ध मन्त्र में प्राप्त होता है – 'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति' – निश्चय ही जो भूमा है, वही सुख है, अल्प में सुख नहीं है।

ऐसा माना जाता है कि सनकादि कुमार यदा-कदा पृथ्वी पर प्रकट होकर लोगों को त्याग और भगवत्-पूजा में प्रेरित करते हैं और ईश्वरानुरागी साधकों को आर्शीवाद देते हैं।

(क्रमशः)

जीव के चार प्रकार

श्रीरामकृष्ण परमहंस

जीव चार प्रकार के कहे गए हैं – बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्य। संसार मानो जाल है और जीव मछली। ईश्वर, यह संसार जिनकी माया है, मछुए हैं। जब मछुए के जाल में मछलियाँ पड़ती हैं, तब कुछ मछलियाँ जाल चीरकर भागने की अर्थात् मुक्त होने की कोशिश करती हैं। उन्हें मुमुक्षु जीव कहना चाहिए। जो भागने की चेष्टा करती हैं, उनमें से सभी नहीं भाग सकतीं। दो-चार मछलियाँ ही धड़ाम से कूदकर भाग जाती हैं। तब लोग कहते हैं, वह बड़ी मछली निकल गयी। ऐसे ही दो-चार मनुष्य मुक्त जीव हैं। कुछ मछलियाँ स्वभावत: ऐसी सावधानी से रहती हैं कि कभी जाल-सहित इधर से उधर भागती हैं, और सीधे कीच में घुसकर देह छिपाना चाहती हैं। भागने की कोई चेष्टा नहीं, बल्कि कीच में और गड़ जाती हैं। ये ही बद्ध जीव हैं। बद्ध जीव संसार में अर्थात् कामिनी कांचन में फँसे हुए हैं, कलंकसागर में मग्न हैं, पर सोचते हैं कि बड़े आनन्द में हैं ! जो मुमुक्षु या मुक्त हैं, संसार उन्हें कूप जान पड़ता है, अच्छा नहीं लगता। इसीलिए कोई-कोई ज्ञान-लाभ, ईश्वर-लाभ हो जाने पर शरीर छोड़ देते हैं, परन्तु इस तरह का शरीरत्याग बड़ी दूर की बात है।

''बद्ध जीवों – संसारी जीवों को किसी तरह होश नहीं होता। कितना दुख पाते हैं, कितना धोखा खाते हैं, कितनी विपदाएँ झेलते हैं, फिर भी बुद्धि ठिकाने नहीं आती। ऊँट कटीली घास को बहुत चाव से खाता है। परन्तु जितना ही खाता है उतना ही मुँह से धर-धर खून गिरता है, फिर भी कँटीली घास को खाना नहीं छोड़ता ! संसारी मनुष्यों को इतना शोकताप मिलता है, किन्तु कुछ दिन बीते कि सब भूल गए। ○○○

काशी के बनबाबा (१)

स्वामी अप्रमेयानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(प्रस्तुत निबन्ध का मूल बांगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन साधना कुटीर, ओंकारेश्वर के स्वामी उरुक्रमानन्द जी ने किया है।)

सन् १९८४ ई. के नवम्बर महीने के उत्तरार्ध में एक दिन दोपहर को भोजनोपरान्त बनबाबा को अस्पताल के ड्रेसिंग रूम से ले आने के बाद एवं एप्रन (अस्पताल गणवेश) आदि खोलने के उपरान्त कमरे के सामने वाले बरामदे में (महाराज तब काशी सेवाश्रम के ग्रन्थालय के दक्षिण पूर्व दिशा के अन्तिम कमरे में निवास करते थे, उस कमरे में लगभग ५० वर्षों से निवास कर रहे थे।) एक तख्त के ऊपर बैठाकर मैं उनकी तेल-मालिश कर रहा था। अन्य वृद्ध संन्यासीवृन्द धूप में बैठकर चर्चा कर रहे थे। उसी समय सुनील महाराज (स्वामी स्तुत्यानन्द) ने मुझसे कहा, "ओ ब्रह्मचारी महाराज ! तुम किसकी सेवा कर रहे हो, जानते हो?" मैं कुछ न समझकर बुद्धू के समान उन्हें देखने लगा। तब उन्होंने मुझसे पूछा, "तुम्हारे गुरु कौन हैं?" 'पूजनीय प्रभु महाराज जी।" उन्होंने कहा, "पूजनीय प्रभु महाराज बनबाबा को काशी के सचल विश्वनाथ कहा करते थे। खूब निष्ठापूर्वक महाराज की सेवा करो।"

उस समय बनबाबा की उम्र लगभग ८१ वर्ष की थी। इस उम्र में भी महाराज नाश्ते के बाद अस्पताल के ओ.पी.डी. ड्रेसिंग रूम में जाकर रोगी-नारायण की ड्रेसिंग किया करते थे। उनका ड्रेसिंग करना एक देखने की वस्तु थी। ऐसा लगता था कि वे निष्ठापूर्वक पूजा कर रहे हों। घाव को साफ करते समय रोगी-नारायण को विशेष कष्ट न हो, इसलिये वे सहानुभूतिपूर्ण बातें करते हुए ड्रेसिंग किया करते थे। रोगी-नारायण के मुखमण्डल पर कष्ट होते हुए भी आनन्द भरी मुस्कान देखने में आती थी। कितने ही प्रकार के दुर्गन्धियुक्त घाववाले रोगी-नारायण आया करते थे। हम लोग दुर्गन्ध के कारण कमरे में घुस नहीं पाते थे। किन्तु वे निर्विकार चित्त से छोटे-बड़े सभी रोगी-नारायणों की सेवा किया करते थे। हम लोग महाराज से पूछते थे, "आपको दुर्गन्ध नहीं आती?' वे मन्द मुस्कान से कहा करते, 'किसी भी प्रकार की दुर्गन्ध मुझे नहीं आती।"

१५ जनवरी, सन् १९८४ में मैं काशी सेवाश्रम में एक ब्रह्मचारी के रूप में वहाँ सेवा करने हेतु आया था। उसी समय एक ब्रह्मचारी बनबिहारी महाराज की सेवा में नियुक्त थे। उन ब्रह्मचारीजी ने महाराज के साथ मेरा परिचय करवा दिया। प्रथम दर्शन में ही महाराज की दिव्य सौम्य मूर्ति के दर्शन कर मुझे बड़ा अच्छा लगा। बनबिहारी महाराज ने मुझसे सेवाश्रम में तन-मन से नारायण सेवा करने के लिए कहा। रोगी को नारायण क्यों कहते हैं, यह पूछने पर बनबिहारी महाराज ने कहा, 'देखो ! स्वामीजी ने ठाकुर के भाव को सामने रखकर शिवज्ञान से जीव की सेवा करने के लिये कहा था। इसी भावादर्श को लेकर इस सेवाश्रम का निर्माण हुआ था। इसीलिए यहाँ सभी रोगियों को नारायण कहा जाता है। इसी भाव को लेकर यहाँ सेवाकार्य किया जाता है।"

बहुत दिन पहले की घटना है, हम लोग तब ब्रह्मचारी थे। एक नये ब्रह्मचारी सेवाश्रम में प्रवेश लेने के पश्चात वार्ड में सेवा करने के बाद वापस आ रहे थे। उस समय पूजनीय केदारबाबा (स्वामी अचलानन्द) अम्बिकाधाम में रहा करते थे। उनके पास जाकर अस्पताल की सारी जानकारी देनी पड़ती थी। वे एकाग्रचित सब सुना करते थे एवं आवश्यक होने पर कुछ कहा करते थे। हम तीनों ब्रह्मचारी जैसे ही उनके पास पहुँचे, तो नये ब्रह्मचारी से केदारबाबा ने पूछा, "तुमने आज क्या सेवा की?" नये ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, "आज तीन नये Patient ने प्रवेश लिया है।" यह सुनकर महाराज ने पुनः पूछा, 'उन्हें क्या हुआ?" तीन Patient ने प्रवेश लिया है, तब केदारबाबा स्वयं ही Patient ! Patient ! Patient! कहते हुए रोने लगे। अभी से यह हाल है, तो बाद में क्या होगा ! हम लोगों ने पूजनीय केदार महाराज को समझाया कि इस नये ब्रह्मचारी को सेवाश्रम के बारे में विशेष जानकारी नहीं है। इधर ब्रह्मचारी भयभीत हो गया। महाराज कुछ प्रकृतिस्थ होकर बोले, 'नारायण भाव से सेवा न करने पर कुछ भी होना सम्भव नहीं है।" पूज्य हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) कहा करते थे कि यदि कोई तीन दिनों तक नारायण भाव से रोगी नारायण की ठीक-ठीक सेवा करे, तो उसे ब्रह्मज्ञान अवश्य ही होगा।

इसी प्रसंग में बनबिहारी महाराज ने कहा था। मैं तब चैतन्य ब्रह्मचारी था। किसी उत्सव के उपलक्ष्य में हरिद्वार से महामण्डलेश्वर (सम्भवत: मंगलानन्दगिरीजी महाराज) प्रवचन देने हेतु काशी आये थे। उन्हें सेवाश्रम के

अस्पताल को दिखाने का दायित्व मुझ पर था। रोगी-नारायण के वार्ड, ड्रेसिंग रूम, रसोईघर आदि देखने के बाद मंगलानन्दगिरिजी महाराज बहुत खुश हुए थे। बाद में प्रवचन देते समय मंगलानन्दजी महाराज बोले, 'आज सुबह एक ब्रह्मचारीजी ने मुझे पूरा अस्पताल दिखाया, सर्वत्र ही मानो नारायण के रहने की जगह दिखाकर मुझे अभिभूत कर दिया। एक साधारण ब्रह्मचारी यदि सर्वत्र नारायण भाव से सेवारत हैं और व्यवहार में यदि वैसा ही भाव रखें, तब तो शास्त्रादि पढ़कर जिस अवस्था को प्राप्त होने की हम चेष्टा करते हैं, रामकृष्ण मिशन के साधु-ब्रह्मचारीगण निष्काम सेवा के द्वारा उसी अवस्था को प्राप्त करते हैं, इस बात को स्वीकार करने में मुझे बिल्कुल भी दुविधा नहीं हो रही है।''

बनबिहारी महाराज के दादाजी उड़ीसा राज्य के ज्वलेश्वर थाने के अन्तर्गत खुँटावस्ता गाँव के ब्राह्मण थे। किसी कारणवश वे मेदिनीपुर जिले के काँथी सब-डिविजन के अन्तर्गत जामुआ मधुसूदन बाड़ग्राम में स्थानान्तरित हो निवास करते थे। उनके सुपुत्र अर्थात् बनबिहारी महाराज के पिताजी श्री विजयगोविन्द सिंह पूज्य स्वामी शिवानन्द महाराज के शिष्य थे। विजयगोविन्द सिंह की पत्नी एक नवजात शिशु विपिनबिहारी को जन्म देकर स्वर्गलोक सिधार गईं। उसके पश्चात उन्होंने सन्तान-पालन के निमित्त श्रीमती झाड़ेश्वरी देवी से विवाह किया। उनसे पहले अन्नदा और रासमणि नामक दो पुत्रियाँ हुईं। उसके बाद चार पुत्र हुए – बिनोदबिहारी, बनबिहारी, बंकिमबिहारी और हराधन। बनबिहारीजी की माताजी बहुत ही सहज-सरल तथा भक्तिमती महिला थीं एवं अपने जीवन के अन्तकाल में वे काशी में अपने साधु पुत्र बनबिहारी महाराज के पास आई थीं। बनबाबा ने यथाशक्ति माँ की सेवा की थी। वृद्धा ने अन्त समय में सचेत अवस्था में काशी में ही देहत्याग किया।

बचपन में पढ़ाई-लिखाई करने में बनबिहारी महाराज का मन नहीं लगता था। किन्तु एक बार जो कुछ भी सुन लेते उसे स्मरण रखते थे। बचपन में वे मैदान में घूमा करते थे तथा पेड़ पर चढ़कर बाँसुरी बजाना उन्हें बड़ा प्रिय था। बचपन से ही देव एवं ब्राह्मणों के प्रति उनकी श्रद्धा-भक्ति थी, विशेषकर शिवजी की पूजा करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था।

पाठशाला में पाँचवी कक्षा में उन्हें प्रवेश दिलवाया गया। आठवीं कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में उनके पिताजी ने उन्हें एक पॉकेट-घड़ी उपहार स्वरूप दी थी। हमने उनके श्रीमुख से सुना था कि वह स्वदेशी आन्दोलन का समय था। नवीं कक्षा में जाने पर वे भी स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित हुए थे। विदेशी कपड़ों का निषेध करने का दौर चला था। काँथी में विदेशी कपड़ों का एक बड़ा गोदाम था। उसे जलाने की योजना बन रही थी। महाराज की उम्र तब १५-१६ की थी। महाराज कहते हैं – ''मुझ पर दायित्व था यह देखने का कि मिल में ठीक से आग लगी है या नहीं। मिल से थोड़ी दूरी पर एक शिवमन्दिर था। पूजा के लिए सब उपकरण ले जाकर मैं बार-बार यह देख रह था कि मिल में आग लगी है या नहीं। दोपहार को दो क्रान्तिकारियों ने जलती हुई मशाल को तीर के द्वारा खुली हुई खिड़कियों की ओर फेंक दिया। कुछ क्षण में ही अग्निकाण्ड शुरू हो गया। अग्नि ज्वालाएँ चारों ओर लपलपाती हुई फैलने लगीं। चारों तरफ हाहाकार मच गया। थोड़े ही समय में सारी मिल जलकर राख हो गयी। मैं सुबह विशेष मनौती लेकर शिवपूजा करने गया था। लौटते समय अन्य लोगों के साथ पुलिस ने मुझे भी साथ ले लिया। उन्होंने देखा मैं सचमुच ही शिवपूजा करने गया था एवं मेरी कम उम्र को देखकर पुलिस ने मुझे छोड़ दिया। घर वापस आने में देर होने से मेरी माँ उद्विग्न हो रही थी। **(क्रमशः)**

(पृष्ठ २७ का शेष भाग)

करेंगे। किन्तु प्रार्थना सच्ची होनी चाहिए। वह आन्तरिक होनी चाहिए। आपके हृदय और आत्मा प्रार्थना से पूर्ण होने चाहिए। प्रार्थना को फलदायी होने के लिए श्रद्धा होनी चाहिए। यह श्रद्धा ही प्रार्थना का वास्तविक मर्म है।

क्या आप जानते हैं कि भगवान कैसे हमारी प्रार्थनाएँ सुनते हैं? वे हमारे मन को इस तरह तैयार करते हैं कि वह अच्छी तरह पढ़ाई कर सके। वे मन को ऊर्जा और शक्ति से पूर्ण कर देते हैं। वे मन में स्थित हमारी सुप्त क्षमता को जागृत कर देते हैं। एक कुशल मन जो कुछ चाहे प्राप्त कर सकता है। अधिक से अधिक विद्यार्थियों को प्रार्थना के इस सरल और अद्भुत उपाय से अवगत कराना चाहिए। किस तरह प्रार्थना की जाए और पढ़ाई में उसका लाभ उठाया जाए, इसकी भी जानकारी अधिक से अधिक विद्यार्थियों को देनी चाहिए। ○○○

राष्ट्र-निर्माण में स्वामी विवेकानन्द का अवदान

प्रो. बालकृष्ण कुमावत, उजैन

भारत के धराधाम पर श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द का अवतरण एक अद्भुत अनुपम एवं अद्वितीय घटना है। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने साधनापूर्वक धर्म की जो अनुभूतियाँ प्राप्त की थीं, उनके व्यावहारिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया। डॉ. रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, ''रामकृष्ण और विवेकानन्द एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानन्द उनकी व्याख्या बनकर आये। रामकृष्ण दर्शन थे, विवेकानन्द ने उनके क्रिया-पक्ष का आख्यान किया।'' यदि रामकृष्ण हिन्दू-धर्म की गंगा थे, जो कमण्डलु में बन्द थी, तो विवेकानन्द इस गंगा के भगीरथ हुए। इसे रामकृष्ण के कमण्डलु से निकालकर उन्होंने सारे विश्व में फैला दिया।''

१२ जनवरी, १८६३ ई. को दिव्य विभूति स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ दत्त) का जन्म कोलकाता के एक कायस्थ परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त तथा माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। उनकी महासमाधि ४ जुलाई, १९०२ ई. को ९ बजकर १० मिनट पर हुई। वे मात्र ३९ वर्ष ५ माह और २४ दिन इस धरा-धाम पर रहे। इस अल्प अवधि में उन्होंने राष्ट्रोत्थान, पुनर्जागरण, भारतीय संस्कृति की विश्वभर में पहचान स्थापित करने, भारत की सोई हुई युवाशक्ति एवं उर्जा को अपने धर्म से परिचित कराने, भारत के प्रति गौरव एवं भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न करने आदि का जो महान कार्य किया, वह हजारों वर्षों तक भी सम्भव नहीं था। उनके समूचे जीवन का एक-एक पल भारत के नव-निर्माण, देशभक्ति की दृढ़ भावना जाग्रत करने और धर्म की सही व्याख्या में व्यतीत हुआ। यथार्थ धर्म की शिक्षा देने के अतिरिक्त स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण विश्व को जनता-जनार्दन की सेवा पूजा के भाव से करने की शिक्षा दी। उन्होंने मानव-निर्माणकारी धर्म एवं मानव निर्माणकारी दर्शन की शिक्षा दी, जो हमारे राष्ट्रीय निर्माण के लिए अनुपम देन है। हमारे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में, स्वामीजी ने जो कुछ भी लिखा या कहा है, वह हमारे लिये हितकर है और होना ही चाहिये तथा आनेवाले लम्बे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा।.... प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उन्होंने वर्तमान भारत को दृढ़ रूप से प्रभावित किया है। मेरे विचार में तो हमारी युवा पीढ़ी स्वामी विवेकानन्द से नि:सृत होने वाले ज्ञान, प्रेरणा एवं तेज के स्रोत से लाभ उठाएगी।''

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार स्वार्थ-बुद्धि रहित कर्म करना ही उपासना करना है। ऐसा कर्म ज्ञान-भक्ति से अलग नहीं, वरन् उन्हें अभिव्यक्त करनेवाला है। उनके लिए कारखाना, अध्ययन-कक्ष, खेत और खेल के मैदान आदि भगवान के साक्षात्कार के वैसे ही उत्तम व योग्य स्थान हैं, जैसे साधु की कुटी या मंदिर। उनके लिए मानव की सेवा और ईश्वर की पूजा, पौरुष तथा श्रद्धा, सच्चे नैतिक बल और आध्यात्मिकता समान हैं। एक बार उन्होंने कहा था, ''कला, विज्ञान एवं धर्म एक ही सत्य की अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यम हैं।''

स्वामी विवेकानन्द के कई प्रकार के उद्देश्य थे। उन्होंने भारत के कोने-कोने में भ्रमण करके भारत की जनता की कथा-व्यथा के प्रत्यक्ष दर्शन किये, उसके दुख-दर्द को समझा तथा उसकी मानसिकता से परिचित हुए। आदि-शंकराचार्य के बाद कन्याकुमारी से कश्मीर तक सारे भारत में सर्वाधिक भ्रमण करनेवाले तथा देशवासियों की स्थिति का अध्ययन करनेवाले स्वामी विवेकानन्द ही थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि सबसे बड़ा काम धर्म की पुनर्स्थापना है। बुद्धिवादी मनुष्यों की श्रद्धा धर्म पर से केवल भारत में ही नहीं, सभी देशों में हिलती जा रही थी। अत: यह आवश्यक समझा गया कि धर्म की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जाय जो अभिनव हो, मनुष्य को ग्राह्य हो और जो उसकी इहलौकिक विजय के मार्ग में बाधा नहीं डाले। दूसरा काम हिन्दू पर, हिन्दुओं की श्रद्धा कायम रखना था। किन्तु हिन्दू यूरोप से काफी प्रभावित हो चुके थे और अपने धर्म एवं इतिहास पर भी वे तब तक विश्वास करने को तैयार न

थे, जब तक यूरोप के लोग उनकी प्रशंसा नहीं करें। तीसरा काम भारतवासियों में आत्मगौरव की भावना को प्रेरित करना था, उन्हें अपनी संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक परम्पराओं के सुयोग्य उत्तराधिकारी बनाना था। इन तीनों कार्यों को स्वामी विवेकानन्द ने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया। राजा राममोहन राय के समय से भारतीय संस्कृति और समाज में जो आन्दोलन चल रहे थे, वे विवेकानन्द में आकर अपनी चरम सीमा पर पहुँचे। विभिन्न समाज-सुधारकों तथा चिन्तकों ने भारत में जो भूमि तैयार की, स्वामी विवेकानन्द उसमें से अश्वत्थ होकर उठे। नये भारत को जो कुछ कहना था, वह सब उनके मुख से निःसृत हुआ। नये भारत को जिस दिशा की ओर जाना था उसका स्पष्ट संकेत स्वामी विवेकानन्द ने दिया था।

वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द वह सेतु हैं, जिसने प्राचीन तथा नवीन भारत को मिलाया, वे वह समुद्र हैं, जिसमें धर्म, राजनीति, राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता, उपनिषद, विज्ञान आदि सब के सब समाहित होते हैं। विश्वकवि रविन्द्रनाथ टैगोर का यह कथन समीचीन है, "यदि कोई भारत को समझना चाहता है, तो उसे विवेकनन्द को पढ़ना चाहिए।" नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में, "स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नई पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी, उसके अतीत के प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्‌गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं।"[३]

११ सितम्बर, १८९३ ई. को शिकागो के आर्ट इन्स्टीट्यूट का कोलम्बस हॉल ७००० लोगों से खचाखच भरा था। वहाँ स्वामी विवेकानन्द का ऐतिहासिक भाषण एक अमर-संदेश के रूप में विश्व की धरोहर के रूप में जाना जाता है। इस भाषण के सम्बोधनकारी वाक्यांश "सिस्टर्स एण्ड ब्रदर्स ऑफ अमेरिका" सुनकर सभी लोग कुर्सियों से खड़े हो गये। विद्युत तरंगों-सा प्रभाव सभागार में उपस्थित जनमेदिनी पर हुआ। तालियों की गड़गड़ाहट से सारा वातावरण गूँज उठा। "वसुधैवकुटुम्बकम्" की भारतीय संस्कृति की आवधारणा से उपस्थित श्रोताओं का परिचय हुआ। वैश्विक परिवार के विचार की आधारशिला यह वाक्यांश ही था, जिसने सभी व्यक्तियों पर चुम्बकीय प्रभाव डाला। स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्याख्यान में कहा – "मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम संस्कृति दोनों की शिक्षा दी है। हमलोग सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता में ही विश्वास करते हैं, सब धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का गर्व है, जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों के उत्पीड़ितों तथा शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व है कि हमने अपने पक्ष में यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट अंश को स्थान दिया था, जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी, जिस वर्ष उनका पवित्र मन्दिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्वित अनुभव करता हूँ, जिसने महान जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है। भाइयो ! मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ, जिसकी आवृत्ति मैं बचपन से कर रहा हूँ और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों लोग किया करते हैं –

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।[४]

– जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचिवाले विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जानेवाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

यह सभा, जो अभी तक आयोजित सर्वश्रेष्ठ पवित्र सम्मेलनों में से एक है, स्वतः श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के इस अद्‌भुत उपदेश का प्रतिपादन एवं जगत् के प्रति उसकी घोषणा है –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।[५]

– हे अर्जुन ! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ। लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए, मेरी ही ओर आते हैं।

"साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी बीभत्स वंशधर धर्मान्धिता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी हैं। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं,

सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं। यदि ये बीभत्स दानवी न होती तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घण्टा-ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होनेवाले सभी उत्पीड़नों का तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्युनिनाद सिद्ध हों।''[६]

इसके बाद १५, १९, २०, २६ तथा २७ सितम्बर, १८९३ को स्वामी विवेकानन्द के महत्त्वपूर्ण भाषण विश्वधर्म-महासभा में हुए। तदनन्तर अमेरिका तथा यूरोप के भिन्न नगरों में सैंकड़ों भाषणों के आयोजन होते रहे। स्वामी विवेकानन्द ने एक योद्धा संन्यासी के रूप में सारे विश्व में अपनी अप्रतिम विद्वत्ता को सिद्ध कर दिया। प्रो. राइट ने स्वामी विवेकानन्द को विश्व धर्म-महासभा में व्याख्यान देने हेतु जो संस्तुति पत्र लिखा था, उसकी यह बात शत-प्रतिशत सही सिद्ध हुई। वे लिखते हैं –

''सारे अमेरिका के सभी प्रोफेसरों की विद्वत्ता एक ओर और इस व्यक्ति की विद्वत्ता एक ओर, तो भी हम इनके पसंगे नहीं हो पायेंगे। कृपया इन्हें धर्मसभा में भाग लेने की अनुमति प्रदान करें।''

स्वामी विवेकानन्द चार वर्ष तक भिन्न-भिन्न देशों में व्याख्यान देते हुए १५ फरवरी, १८९७ को स्वदेश लौटे। भारत के धराधाम पर आते ही भारतमाता के चरणों में उन्होंने दण्डवत प्रणाम किया तथा मातृभूमि की पवित्र रज को मस्तक पर चढ़ाया।

स्वामी विवेकानन्द ने सेनापति की तरह अपनी योजना को समझाते हुए लोगों को एकजुट होकर कार्य करने का आह्वान किया – ''उठो, जागो और लक्ष्यप्राप्ति तक रुको मत। मेरी योजना है कि भारत में ऐसी संस्थाएँ हों, जो हमारे शास्त्रों के सत्य को देश-देशान्तर में प्रसारित करने के लिए नवयुवकों को प्रशिक्षित करें। मनुष्य चाहिए। बलवान, उत्साही, विश्वासी सच्चे नवयुवक चाहिए। ऐसे सौ नवयुवक संसार में क्रान्ति ला देंगें। संकल्प सबसे बड़ी चीज है, वह सर्वजयी है, क्योंकि वह ईश्वर की देन है। शुद्ध दृढ़-संकल्प सर्वशक्तिमान है।

''आगामी पचास वर्ष के लिए हमारे मस्तिष्क से अन्य सभी देव-दवताओं को निकल जाने दो। हमारा राष्ट्र ही हमारा एकमात्र जागृत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम नहीं देख पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़े और जिस विराट देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? अपने चारों ओर फैले विराट की पूजा ही प्रथम पूजा है। ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं; और इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी।''

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक मानव के आदर्श प्रतिनिधि हैं, यह सर्वमान्य तथ्य है। विशेषकर भारतीय युवकों के लिये स्वामी विवेकानन्द से बढ़कर दूसरा कोई नेता नहीं हो सकता। श्रीमद्भगवद्गीता की यह वाणी 'वासुदेव: सर्वमिति स: महात्मा सुदुर्लभ:' स्वामी विवेकानन्द पर अक्षरश: लागू होती है। ऐसी दिव्य विभूति का अवतरण भारत में होना एक अभूतपूर्व घटना है। भगिनी क्रिस्टीन का यह कथन रेखांकित करने योग्य है – ''धन्य है वह देश जिसने उनको जन्म दिया है, धन्य हैं वे लोग जो उस समय इस पृथ्वी पर जीवित थे, और धन्य हैं वे कुछ लोग – धन्य-धन्य जिन्हें उनके पादपद्मों में बैठने का सौभाग्य मिला।'' ○○○

संदर्भ ग्रन्थ – १. संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण – डॉ. रामधारीसिंह दिनकर, पृ. ५८२ **२.** विवेकानन्द साहित्य संचयन, रामकृष्ण मठ नागपुर, षष्टम् संस्करण, पृ. १३ **३.** वही **४.** शिवमहिम्नस्तोत्र, पृ. ७ **५.** श्रीमद्भगवद्गीता, ४/११ **६.** ११ सितम्बर, १८९३ को विश्वधर्म महासभा शिकागो में दिया गया व्याख्यान **७.** जयतु स्वामी विवेकानन्द - ओमप्रकाश, प्रथम संस्करण, पृ. ११५.

ईश्वर-प्राप्ति ही मानव-जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है। एकमात्र मनुष्य-जीवन में ही भगवत्-प्राप्ति सम्भव है, इसी कारण मनुष्य-जीवन को श्रेष्ठ कहते हैं। इन्द्रिय-सुखभोगादि तो अन्य योनियों में भी होता है, पर भगवत्प्राप्ति मनुष्य-जीवन के अलावा अन्य किसी जीवन में भी नहीं होती।

– स्वामी तुरीयानन्द

बिहार-झारखण्ड रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद की सभा आयोजित हुई

१० से १२ अक्टूबर, २०१५ तक रामकृष्ण सारदा आश्रम, राजगृह में बिहार-झारखण्ड रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद की वार्षिक सभा का आयोजन हुआ, जिसमें रामकृष्ण मठ, जामतारा के सचिव स्वामी सनकानन्द जी, रामकृष्ण मिशन छपरा के सचिव स्वामी अतिदेवानन्द जी, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के सचिव स्वामी सुखानन्द जी, पटना आश्रम के ही स्वामी द्वारकेशानन्द जी, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर के स्वामी दयासारानन्द जी, रामकृष्ण मिशन आाश्रम, मोराबादी, राँची के सचिव स्वामी भवेशानन्द जी, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर के स्वामी करुणामयानन्द जी, रामकृष्ण मिशन, राँची टी. बी. सेनीटोरियम के अध्यक्ष स्वामी बुद्धदेवानन्द जी ने भाग लिया। रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा के प्रतिनिधि स्वामी यज्ञधरानन्द जी महाराज पर्यवेक्षक के रूप में पधारे थे। परिषद के कुल २८ केन्द्रों में से १७ केन्द्रों ने भाग लिया।

रामकृष्ण सारदा आश्रम, राजगीर में दुर्गापूजा मनाई गयी, जिसमें ५००० लोगों ने प्रसाद पाया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कटिहार, बिहार में विविध कार्यक्रम आयोजित हुए

९ अक्टूबर से ११ अक्टूबर, २०१५ तक रामकृष्ण आश्रम, कटिहार में अनेकों कार्यक्रम हुए। ९ अक्टूबर को प्रात: १०.३० से ११.३० तक आश्रम के मंदिर में भक्तों के लिये 'श्रीरामकृष्णदेव' पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने व्याख्यान दिया। आज ३ बजे से शिशुमंदिर का वार्षिकोत्सव था। इसमें बेलूड़ मठ से पधारे भाव-प्रचार परिषद के सह-संयोजक स्वामी देवराजानन्द जी ने विद्यालय में नियमित आकर शिक्षा ग्रहण करने एवं बच्चों के सर्वांगीण विकास तथा स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने बच्चों के निर्माण में अभिभावकों की भूमिका पर प्रकाश डाला। उसके बाद ४ बजे से ७ बजे तक बच्चों ने विविध प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत कर अपनी कला से सबका मन मोह लिया।

१० अक्टूबर, २०१५ को ८.३० से १२.३० बजे तक मंदिर में भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें 'रामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में श्रीरामकृष्ण के उपदेश' पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने व्याख्यान दिया और 'श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेश' पर बांगला में व्याख्यान और भक्तों के प्रश्नों के उत्तर स्वामी देवराजानन्द जी ने दिया। अपराह्न ३ बजे विद्यामंदिर का वार्षिकोत्सव था, जिसमें छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों को स्वामी देवराजानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, आश्रम के सचिव स्वामी महेश्वरानन्द जी ने संबोधित किया। प्राचार्य स्वामी शैलसुतानन्द जी ने प्रतिवेदन पढ़ा। उसके बाद बच्चों ने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया एवं विभिन्न प्रतियोगिताओं के पुरस्कार वितरण हुए।

११ अक्टूबर को प्रात: १०.३० बजे से ११.३० बजे तक मंदिर में माँ सारदा पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी के व्याख्यान हुए। शाम को ४ बजे से धर्मसभा हुई, जिसमें स्वामी देवराजानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने सभा को संबोधित किया। स्वामी महेश्वरानन्द जी ने स्वागत-भाषण और धन्यवाद-ज्ञापन तथा स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द ने सभा-संचालन किया। प्रतिदिन तपन सिकदार के भजन हुए।

रामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर में ११ से १३ अक्टूबर, २०१५ तक श्रीरामकृष्ण मंदिर में स्वामी निखिलात्मान्द जी महाराज के 'तुलसी के राम' पर प्रवचन हुए। यहाँ शारदीय दुर्गापूजा का आयोजन भी हुआ, जिसमें मूर्ति बैठाकर नवरात्रभर माँ की विशेष भोग, पूजा-आरती की गयी। २१ अक्टूबर दुर्गाष्टमी के दिन २००० भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया और बाहर १००० लोगों की नारायण-सेवा की गयी।

छत्तीसगढ़ विवेकानन्द युवा महामण्डल के राज्यस्तरीय युवा सम्मेलन का आयोजन २३ से २५ अक्टूबर, २०१५ तक बिलासपुर में हुआ, जिसमें स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी प्रपत्यानन्द, स्वामी तन्मयानन्द, श्याम कुमार पाड़ी, डॉ. अवधेश प्रधान आदि ने व्याख्यान दिये। ○○○